विवेक-शिखा
श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी
वर्ष-१६
अक्टूबर-१९९७
अंक-१०
रामकृष्ण निलयम्,
जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६. श्रीमती गिरिजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५७. श्री अशोक कौशिक-मालवीय नगर, (नई दिल्ली)
१५८. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)
१५९. श्री रामकृष्ण साधना कुटीर, खण्डवा (म० प्र०)
१६०. श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म० प्र०)
१६१. श्री डी० एन० थानवी, जोधपुर (राजस्थान)
१६२. श्री सोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आ०)
१६३ डा० (श्रीमती) रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर(उ प्र.)
१६४. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मल्लिक—नई दिल्ली
१६५. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामठी (नागपुर)
१६६. कुमारी जसवीर कौर आहूजा, पटियाला, पंजाब
१६७. श्रीमती मंजुला बोर्दिया, उदयपुर (राजस्थान)
१६८, श्रीमती सुदेश, अम्बाला शहर (हरयाणा)
१६९. डॉ० अजय खन्ना (बरेली उ० प्र०)
१७०. श्री एस० टी पुराणिक—नागपुर
१७१. श्री धन्नालाल अमृतलाल सोलंकी, कलवानी
१७२. डॉ० कमलाकांत, बड़ोदा (गुजरात)
१७३. डॉ० विनया पेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष बोनी, रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजोभाई बी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एम० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अडकिया कन्सलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—राजकोट (गुजरात)
१८१. अद्वैत आश्रम, मायावती—(उ० प्र०)
१८२. श्री शत्रुघ्न शर्मा, फतेहाबाद—(बिहार)
१८३. रामकृष्ण मिशन, शिलांग—(मेघालय)
१८४. श्री त्रिभुवन महतो, राँची—(बिहार)
१८५. रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची—(बिहार)
१८६. श्री आर० के० चोपड़ा, इलाहाबाद—(उ० प्र०)
१८७. श्री श्यामनन्दन सिंह, राँची - (बिहार)
१८८. श्री डी० आर० साहू, रायपुर—(म० प्र०)
१८९. रामकृष्ण मिशन स्कूल, नरोत्तमनगर (अरुणाचल प्र०)
१९०. रामकृष्ण मिशन हॉस्पिटल, इटानगर (अरु० प्र०)
१९१. रामकृष्ण मिशन स्कूल, अलाँग (अरु० प्र०)
१९२. श्री घनश्याम चन्द्राकर, औंधी (म० प्र०)
१९३. श्री भास्कर मढ़रिया, भिलाई (म० प्र०)
१९४. स्वामी चिरन्तनानन्द, रा.कृ.मि.नरोत्तमनगर (अ.प्र.)
१९५. श्री हरवंश लाल पहडा, जम्मूतवी (कश्मीर)
१९६. श्री योगेश कुमार जिन्दल, विवेक बिहार (दिल्ली)

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष —१६ | अक्टूबर—१९९७ | अंक—१०

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा' ॥

सम्पादक :
डा० केदारनाथ लाभ
सहायक सम्पादक :
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२२६३९

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	५० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	६५ रु०
एक प्रति—	५ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

यदि मूर्तियों के बारे में चिन्मय-बोध रखकर पूजा की जाए, तो उनकी पूजा करते हुए पूजक को ईश्वर दर्शन तक हो जाता है, परन्तु जो मिट्टी या पत्थर समझकर मूर्ति की पूजा करता है उसकी पूजा का कोई फल नहीं होता।

(२)

यदि मूर्तिपूजा में कोई भूल भी हो तो क्या भगवान् नहीं जानते कि पूजा उन्हीं की हो रही है? वे उस पूजा से अवश्य ही प्रसन्न होंगे। तुम उनको भक्ति करो, उन पर प्रेम करो, बस।

(३)

व्याकुलता के होने से ईश्वर मिलते हैं। श्राद्ध का अन्न न खाया करो। संसार में व्यभिचारिणी स्त्री की तरह होकर रहो। व्यभिचारिणी स्त्री घर का सब काम बड़ी प्रसन्नता से करती है, परन्तु उसका मन दिन-रात उसके यार के साथ रहता है। संसार का काम करो, परन्तु मन ईश्वर पर रखो।

(४)

मेरी ब्रह्ममयी माँ ही सब कुछ बनी है। वह आद्या शक्ति ही जीव-जगत् बनी है। वही अनन्त शक्ति स्वरूपिणी जगत् में दैहिक, बौद्धिक, नैतिक, आध्यात्मिक आदि विविध शक्तियों के रूप में प्रकाशित है। मेरी माँ ही वेदान्त का ब्रह्म है। वह ब्रह्म का व्यक्त रूप है।

(५)

गृहस्थ के कर्तव्य हैं प्राणियों के प्रति दया, भक्तों की सेवा और भगवान् के पवित्र नाम का स्मरण-कीर्तन करना।

श्री दुर्गा-स्तुतिः

(श्री दुर्गासप्तशती: एकादशोऽध्याय से चयनित)

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीव, प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं, त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥१॥

आधारभूता जगतस्त्वमेका, महीस्वरूपेण यतः स्थितासि।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैतदाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये ॥२॥

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या, विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्, त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्ति हेतुः ॥३॥

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरित मम्बयैतत्, का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥४॥

सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्ति प्रदायिनी।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥५॥

भावार्थ—शरणागत की पीड़ा दूर करने वाली देवि! हम पर प्रसन्न होओ। हे समस्त जगत की माता! प्रसन्न होओ। विश्वेश्वरी! विश्व की रक्षा करो। देवि! तुम्हीं चराचर जगत् की अधीश्वरी हो।१। तुम इस जगत् की एकमात्र आधार हो, क्योंकि पृथ्वी के रूप में तुम्हारी ही स्थिति है। तुम्हारा पराक्रम अलंघनीय है। तुम्हीं जल रूप में स्थित होकर सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करती हो।२। तुम अनन्त बल सम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो। इस विश्व की कारणभूना परामाया हो। देवि! तुमने समस्त जगत को मोहित कर रखा है। तुम्हीं प्रसन्न होने पर मोक्ष की प्राप्ति कराती हो।३। देवि समस्त विद्याएँ तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। संसार में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं। जगदम्ब! एकमात्र तुमने ही इस विश्व को व्याप्त कर रखा है। तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है? तुम तो स्तवन करने योग्य पदार्थों से परे एवं परा वाणी हो।४। जब तुम सर्वस्वरूपा देवी एवं स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली हो तब इसी रूप में तुम्हारी स्तुति हो गयी। तुम्हारी स्तुति के लिए इससे अच्छी उक्तियाँ और क्या हो सकती हैं ॥५॥

आसुरी वृत्ति की विनाशक हैं माँ दुर्गा

—भोला प्रसाद वर्मा "शास्त्री"

दुर्गा परमात्मा की शक्ति है—ज्ञान, इच्छा और क्रिया इनके तीन नेत्र हैं। माँ दुर्गा सर्व-व्यापित्व भाव से महाशक्ति की आद्या शक्ति है। महिषासुरमर्दिनी का रूप अध्यात्म पक्ष में विद्या से अविद्या के विनाश का द्योतक है। इस विराट संसार में महामोह के रूप में "मधुकैटभ" महिष, शुंभ-निशुंभादि अविद्या एवं महामोह के प्रतीक हैं जो आज भी चुर्तादिक फले हुए हैं। इस महामोह के जाल को महाशक्तिमयी माँ सिंह पर आरूढ़ होकर ही काटती हैं। बिना धर्म को आधार बनाये कोई भी शक्ति आसुरी बन जाती है। अतः माँ सिंह पर आरूढ़ हो इस भयानक मोह या अविद्या के तंतुओं में बंधे मधुकैटभादि सदृश प्राणियों को नष्ट कर सद्बुद्धि और सत्कम की संस्थापना करती है। वह ब्रह्ममयी और ब्रह्म-विद्या के प्रति उन्मुख जनों के लिए अभय वरदायिनी माँ हैं।

दुर्गा सप्तशती का आध्यात्मिक पक्ष तो है ही, उसका एक लौकिक पक्ष भी है जिसे मेरे पुण्य-चरण गुरूदेव चर्चाओं के विभिन्न प्रसंगों के संदर्भ में बताया करते थे। वह कहते थे कि बारम्बार दुर्गा सप्तशती को पढ़ो तो तुम्हें नयी चिन्तनधारा मिलेगी और मिलेगा विचारों का नया उत्स। गुरूदेव के विचारों को समन्वित कर कहा जा सकता है कि माँ दुर्गा समस्त राष्ट्र शक्ति की प्रतीक हैं। इस कथन में किसी प्रकार की अति-शयोक्ति नहीं है। इसे यूं भी देखें तो शक्ति किसी एक की नहीं वरन् राष्ट्र के प्रत्येक जन में होती है। तभी तो दुर्गा सप्तशती के अनुसार मधुकैटभ-वध के परिदृश्यों को आकलित करेंगे तो हम सब पायेंगे वह संभवतः सृष्टि का आदियुग था। शक्ति जो निहित है विष्णु में वैष्णवी शक्तियों के अधि-ष्ठाता हैं किन्तु उस काल में विष्णु योगनिद्रा में आविष्ट हैं। उनका उद्बोधन ही इस आसुरी संकट को दूर कर सकता है—परिणामतः विष्णु को योगनिद्रा से उद्बोधित करवाया जाता है। मधुकैटभ से युद्ध कर उसका वध करते हैं। मधु-कैटभ का वध भी होता है तो भगवान विष्णु की जांघ पर मधुकैटभ के मस्तक को रख कर।

अब दूसरे अध्याय के वर्णनों को लें—मानव सृष्टि का अर्थ सभ्य युग का आरंभ हो चुका है। महिषासुर उन्नत पशु सदृश सबका हनन करता है, अर्थात् समाज में एक ऐसा वर्ग है जो पशु सदृश शारीरिक बल से सम्पन्न है—औचित्य विचार से परे। यह वर्ग मानव मूल्यों की स्थापना में चुनौती बन गया है।

इन्द्रादि देव-वृत्ति वाले जन राज्यविहीन ही नहीं स्थानविहीन कर दिये गये हैं। मोह एवं दंभ का प्रतीक महिषासुर अज्ञान एवं शारीरिक बल मात्र का मूर्तिमान रूप है जो मनुजत्व को नष्ट करने पर तुला है—यूं कहें कि सभ्यता की ओर बढ़ते समाज का राष्ट्र का विकास का एक विरोधी तत्व है जो अज्ञान के अंधकार में पड़ सभ्यता की ओर बढ़ते मानव चरणों पर कुठाराघात कर रहा है। समस्त देव समाज इस आसुरी वृत्ति को नष्ट करने के निमित्त ब्रह्मा के निकट उपस्थित होते हैं, जहाँ विष्णु राष्ट्र के पालनकर्ता और शिव कल्याण

एवं संहारकर्ता जैसे दो महाशक्तियों से संपन्न देव विराजमान हैं। महिषासुर के अनाचार की कथा सुन क्रुद्ध विष्णु के मुख से एक महान तेजपुंज प्रकट हुआ। इसी तेज में ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र देवों के शरीर से निकला तेज मिल गया और वह जाज्वल्यमान तेजपुंज विराट पर्वत सा हो गया। प्रत्येक मानव की शक्ति अत्याचार अर्थात पशुबल प्रधान व्यक्ति के विरोध में खड़ी होती है तो वह दिव्य हो जाती है।

कथानक के अनुसार देवताओं के तेजपुंज से निर्मित वह विराट् शक्ति "नारी स्वरूपा" हुई और तीनों लोक उस दिव्य प्रकाश से आलोकित हो गये—यही थी राष्ट्रशक्ति-स्वरूपा माँ दुर्गा। देव अपनी ही सन्निहित शक्तिपुंज देवीरूपा को अपने समक्ष देख प्रसन्न हो उठे और तब जिस देवता के पास अपना-अपना जो भी अमूल्य सारभाग था, उसे इस शक्तिमयी नारी स्वरूपा को प्रदान किया जिससे वह महाशक्तिमयी हो गयी। देवताओं के समवेत समादर पर परम-प्रसन्न देवी अट्टहास करती है। जब प्रत्येक जन की शक्ति मूर्ति रूप धारण कर एक संघटित शक्ति बिन्दु पर केन्द्रित हो जाय तो शक्ति परमशक्तिशाली होगी ही और उसके सामने कोई दूसरी शक्ति ठहर नहीं सकेगी। यही है आधुनिक विज्ञान और समाजशास्त्र का सिद्धांत। यह तो जानी हुई बात है कि बलहीन व्यक्ति का सर्वस्व पशुबल सम्पन्न व्यक्ति हरण कर लेगा। जैसा कि महिषासुर ने देवताओं के साथ किया। प्रत्येक युग में प्रत्येक राष्ट्र में इस प्रकार के महिषासुर होते आये हैं और संघटित ज्ञान शक्ति धर्म रूपी सिंह पर आरूढ़ हो मानवता की संस्थापना करती है। महिषासुर का बध होता है। प्रचंड पशुबल युक्त विरोधी तत्व महिषासुर जैसे-राष्ट्र की संघटित शक्ति पुंज के समक्ष धराशायी होते हैं।

युग-युग तक यह कथा चलती है। समाज और राष्ट्रीय चेतना मानव सभ्यता परिष्कृत हुई जड़ता के स्थान पर ओजस्विता का प्रादुर्भाव हुआ। सारस्वत शक्तियां क्रियाशील है किन्तु समस्त शक्ति स्वरूप को देख "चंड-मुंड" जैसे अज्ञानता के दूत अपने स्वामी शुंभ और निशुंभ की उस गौरवमयी शक्ति को एक उपभोग की वस्तु के समान अपने सुख-साधन सम्पन्न गृह में जाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। शुंभ एवं निशुंभ विकसित समाज के एक नर पशु हैं जो राष्ट्र या समाज की हर श्रेष्ठ वस्तु को मानव को अपने उपभोग का साधन मात्र समझते हैं और हर क्षण उत्कृष्टता को भोगपरक वस्तु बनाने में संलग्न रहते हैं। ऐसे-शुंभ निशुंभजनों के लिए समाज महत्वपूर्ण नहीं, राष्ट्र अखंडता इच्छित नहीं, विश्वबंधुत्व का भय नहीं। ऐसे जन राष्ट्र की श्रेष्ठ शक्ति का भी हरण अपने कलुषित ज्ञान से करते हैं और बंदिनी बना अपने अहंकार की तुष्टि करना चाहते हैं। शुंभ जैसे विचारधारा वाले जनों का एक सुविशाल संघटन भी होता है जो समाज की रचनात्मक अभिवृद्धि नहीं वरन् अपने अविवेक को ही अपनी उपलब्धि मान चतुराई, उद्दंडता एवं स्वार्थपरता से समाज और राष्ट्र की समन्वित शक्ति की अवमानना करते हैं। शुंभ एवं निशुंभ जैसे तत्वों को समाज के सुख और समृद्धि विरोधी एक अपनी ही रचनात्मक या संघटनात्मक शक्ति को समाज के सुख और समृद्धि विरोधी एक भी होती है जो अत्यधिक धूर्त भी है। जैसे जहाँ एक रक्तबीज गिरता था वहाँ असंख्य रक्तबीज आ खड़े होते थे। समाज में ऐसे रक्तबीजों की कमी किसी देश काल में नहीं रही है। ये रक्तबीज अजस्र स्रोतों से निकल कर देश और समाज का अहित करते रहे हैं। देवी दुर्गा शुंभ और निशुंभ को, रक्तबीज-योजन को परास्त करती है। इस घनघोर युद्ध में सारी आसुरी

शक्तियाँ नष्ट होती है मात्र इनका प्रणेता शुंभ बचता है। वह देवी के महिमामयी शक्तियों के चतुर्दिक विस्तार को देख कह उठता है—"अन्यासां यति बलमाश्रित्य युद्ध मानिनी। अर्थात, हे देवी तू दूसरी स्त्रियों के बल के सहयोग से युद्ध कर रही है।" देवी ने उसकी अज्ञानता पर कहा—दुष्ट देख। मुझको छोड़ कर दूसरा कौन है। देखो मेरी ही विभूतियाँ मुझ में समाविष्ट होती है और इस युद्ध में मैं अकेली हूँ। अन्त में शुम्भ की मूढ़ता एवं अहंकार ने उसे पराजय दी और वह शक्तिमयी माँ दुर्गा के हाथों मारा गया।

अब यदि हम सब वर्तमान को अतीत के इन कथ.-प्रसंगों एवं विभिन्न घटनाओं के परिप्रेक्ष्य से जोड़ कर देखते हैं तो माँ दुर्गा का चरित्र उनकी प्रतिमा का पूजन प्रकरण एक ऐसा चित्रफलक है जिसमें मानव उसके चित्र को एकाग्रता, कर्मनिष्ठा और शक्तियों के समुच्च की प्रक्रिया के साथ सद्-बुद्धि विचार शक्ति का प्रस्फुटन जैसी बातें हैं।

इसी समिष्ट में मनुष्यत्व की समस्त शक्तियां स्थापित होकर देवत्व को प्राप्त करती है, अन्यथा होने पर एक आसुरी वृत्ति की संज्ञा से विभूषित होती हैं। प्रत्येक मनुजपुत्र को निज के विकास के साथ-साथ व्यक्तिगत शक्ति राष्ट्र को विराट शक्ति श्री एवं संपन्नता से जोड़ कर मानव को मानव बनाये रख कर उसे उदात्त-बोध से उन्नत करने में है। मात्र शारीरिक बल अथवा श्रीसंपन्नता के बल से युक्त मानव भी पूर्ण नहीं होता, क्योंकि इससे अज्ञानतारूपी अहंकार-पशु को बल मिलता है। या फिर मात्र छल-बल वाली चतुराई युक्त बुद्धि-मत्ता रक्तबीजों की विषाल टोली स्वार्थी भोगपरक शुंभ-निशुंभ जैसे असुरों के लिए सुख-सुविधा के साधन जुटाती है। अतः मनुजत्व के विकास और देवत्व के निमित एक सद्विवेक युक्त शक्ति-सम्पत्ति एवं बुद्धिशक्ति की अपेक्षा होती है।

(आर्यावर्त, पटना ९ अक्टूबर, १९९७ से साभार)

आनन्दमयी

अनुवादिका : श्रीमती कल्याणी विद्यार्थी

"अहा, क्या आनन्द है आकाश-वातास में।"

पूजा ! दुर्गा पूजा के आगमन में अब कुछ ही दिन शेष हैं। चारों तरफ टगर एवं शिऊली आदि फूलों के मनमोहक सुगन्ध ! खेतों में धानों की दिगन्तव्यापी शोभा। तालाब, पोखरा तथा रैल लाईन के चारों ओर सफेद काश फूलों की शोभा एवं बादल रहित नीला आसमान। इस बादल रहित आसमान से अकस्मात् बारिश। सड़कें, मैदान घाटी बरसात के आक्रमण से मुक्त। प्रकृति के इस रूप को देखने से यह आभास होता है कि मानो पुजारिन स्नान कर सफेद वस्त्र पहने पूजा की तैयारी में खड़ी हो। यहाँ तक कि पक्षियों को चहचहाट से यह प्रतीत होता है कि वे भी पूजा के अगमनी-गीत गा रहें हों।

प्रकृति की इस प्रस्तुति में जमाने से कोई हेरफेर दृष्टिगत नहीं होता है। साल भर के पश्चात् 'माँ' यानी शिवगृहणी, हिमालय-मेनका की पुत्री 'उमा' जो हम सभी की माँ हैं, आ रही हैं। उनके साथ उनकी दोनों कन्याएँ तथा दोनों

पुत्र भी आ रहे हैं। 'माँ' के पिताश्री का घर हिमालय में है परन्तु हिमालय से इतनी दूरी पर स्थित शस्य-श्यामल बंगाल के घर में उनके आगमन से यह पागलपन क्यों ? क्यों बाल से वृद्ध तक में आकुलता ? क्यों बंगाल के घर-घर में माताओं में ससुराल से बेटी के आगमन की अनुभूति ? प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह धनी हो या दरिद्र सभी के मन में यह उन्माद क्यों ?

इस 'क्यों' का कोई जवाब हमारे पास नहीं है। यह किस तरह से होता आया है यह भी नहीं मालूम, परन्तु ऐसा प्रत्येक वर्ष होता है।

प्रत्येक धर्म एवं सम्प्रदाय में एक-न-एक सबसे ज्यादा लोकप्रिय त्योहार है परन्तु क्या दुर्गा पूजा जो सिर्फ 'पूजा' के ही नाम से प्रचलित है—ऐसा अन्तः स्पर्शी तथा स्वतः स्फूर्त त्योहार और किसी धर्म में है ?

'माँ'—हिमालय की पुत्री तथा लक्ष्मी, सरस्वती, कार्तिक एवं गणेश की माँ जरूर हैं लेकिन वही 'माँ' हमारे घर की बेटी भी हैं और सभी की माँ भी है। महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने किसी जमींदार के षड्यंत्र से अपनी ही जमीन से बेदखल हुए उपेन की अनुभूति इस प्रकार वर्णित की है—'माँ' शब्द के उच्चारण मात्र से ही प्राण व्याकुल हो उठते हैं, आँखें नम हो जाती हैं। परन्तु ये पंक्तियाँ तो सही मायने में 'माँ' के आगमन के पहले हम सभी की अनुभूति को वर्णित करती हैं।

'माँ' कोई साधारण देवी नहीं बल्कि सभी देवताओं की शक्ति हैं, समन्विता हैं, सर्वशक्ति की अधिकारी हैं। महाशक्तिशाली पुरुष-देवतागण जिन दानव-अधिपतियों के साथ युद्ध में बारम्बार पराजित हुए हैं, वहीं त्रिभुवन विजयी भयंकर महिषासुर, शुंभ-निशुंभ आदि दानव राजाओं का विनाश करनेवाली माँ, रणचण्डी महादेवी माँ, असुरनाशिनी देवी दुर्गा बंगालवासियों के हृदय में 'माँ' के रूप में विराजमान हैं। देवी और जननी का यह सम्मिलन सिर्फ बंगाल और बंगालवासियों की अपनी महान परम्परा हैं।

'माँ' के आगमन की सभी को प्रतीक्षा है, सभी में व्याकुलता है। 'माँ' के साथ आनेवाले हैं उनके वाहक 'सिंह' तथा सह-वाहक माँ के दो पुत्र तथा कन्याएँ। प्रत्यक्ष रूप से भगवान शिव इस यात्रा में 'माँ' का साथ नहीं देते हैं परन्तु परोक्ष रूप से वे 'माँ' के पीछे स्थित चलचित्र के केन्द्र-स्थल में विराजमान रहते हैं। साथ ही इस महायात्रा में 'माँ' के साथ विराजमान रहते हैं तैंतीस करोड़ देवी-देवता। ऐसा प्रतीत होता है मानो 'माँ' के साथ-साथ पूरा स्वर्ग ही उतर आया हो। इस पृथ्वी पर जहाँ 'माँ' हैं वहीं स्वर्ग है, जहाँ 'माँ' हैं वहीं देवताओं की लीला-भूमि। महिषासुर भी 'माँ' के साथ हैं तथा 'माँ' के चरण स्पर्श मात्र से ही महिषासुर के असुरत्व का नाश हुआ तथा देवत्व जागृत हुआ है। अतः हम सभी महिषासुर को देवता की तरह पूजते हैं।

देवता शब्द का अर्थ है ज्योतिष्मान—अन्तः ज्योति : अर्थात् अन्तःकरण का प्रकाश। प्रकाश का अर्थ है अन्धकार का विनाश। 'माँ' हम सभी के अन्दर का प्रकाश हैं और महिषासुर जैसे दानव हैं आन्तरिक अन्धकार। प्रकाश के गर्भ में अन्धकार का विलीन होना तथा अन्धकार के अन्तर्धान से आनन्द का आविर्भाव। 'माँ' के आगमन की प्रतीक्षा में हम सभी आनन्द की तलाश करते हैं। 'माँ' ही आनन्द की स्रोत हैं अतः 'माँ' हैं 'आनन्दमयी'। असत्य दुखों को हरण करने वाली 'माँ' को पुकारते हैं 'दुर्गा'।

आज हमारे समाज में चारों ओर घोर निराशा है। दुर्नीति, भ्रष्टाचार, अश्रद्धा, दुष्कर्म आज

हमारी संस्कृति का अंग बन चुके हैं। परन्तु इस समाज में भी 'माँ' की आराधना होती है। परन्तु आज की पूजा शैली में आडम्बर एवं दिखावा ज्यादा हैं पूजा-भावना कम। आज लाखों रुपये मण्डप सजाने तथा रोशनी आदि में खर्च किये जाते हैं और इस खर्च को पूरा करने में नागरिकों पर चन्दा वसूली का जुल्म होता है। 'माँ' की पूजा में अन्तर्निहित आध्यात्मिक मूल्यों को आज हम लगभग भूल चुके हैं।

पूजा की तैयारी में लाखों रुपये खर्च किये जाते हैं परन्तु पूजा के सूत्र पण्डित जी की दक्षिणा में कोई वृद्धि नहीं हुई है। यहाँ तक कि पुरोहित को दी जाने वाली साड़ी एवं चादर इतनी घटिया होती है कि वह व्यवहार योग्य ही नहीं होती। आयोजनकर्ता यह भूल जाते हैं कि पूजा का उद्देश्य मण्डपसज्जा नहीं बल्कि मातृ-वन्दना है। आज लोग उस पण्डितजी की उपेक्षा करते हैं जो माँ की मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा कर पूजा के उद्देश्य को सफल करते हैं। आज लोग उस निर्धन ढोल बजाने वाले को भूल जाते हैं जो दूर-दराज के गाँवों से आकर पूजा के माहौल को चार चांद लगा देते हैं। आज लोग भूल जाते हैं आलोकोज्वल मंडप के आसपास स्थित गरीब, भूखे बेसहारा लोगों को। इस अवधि में इनकी भूख को कम-से-कम मोटे चावल द्वारा ही शांत किया जा सकता है वरना हमें कोई हक नहीं बनता कि हम पूजा के उपलक्ष में नवीन वस्त्र पहनें एवं पकवान का सेवन करें।

'माँ' आ रही हैं। आनन्दमयी आ रही हैं। 'माँ' के स्वागत की तैयारी में प्रकृति तत्पर है। युग-युग से प्रकृति की इस तैयारी में कोई परिवर्तन नहीं आया है। परिवर्तन आया है तो सिर्फ मनुष्य की विचारधारा में। परन्तु मनुष्य की मनोवृत्ति में यह परिवर्तन सकारात्मक नहीं बल्कि नकारात्मक है। किसी भी उत्सव का उद्देश्य सभी को आनन्द में सम्मिलित करना है। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि हमारा आनन्द किसी दूसरे की पीड़ा का कारण नहीं बने। उत्सव का उद्देश्य यह होना चाहिये कि सभी खुशी में सम्मिलित हों तथा सभी का घर सुख तथा शान्ति से परिपूर्ण हो। 'माँ' के नाम पर हम सभी को यह शपथ लेनी चाहिये कि इस बढ़ती हुई अराजकता तथा अनैतिकता को समाप्त कर आपसी भाई-चारे तथा सुख समृद्धि से जीवन व्यतीत करें।

माँ आनन्दमयी हमें शक्ति प्रदान करें।

[उद्‌बोधन : शारदीया संख्या, १९९६ में प्रकाशित अग्रलेख के अंशों का साभार अनुवाद । - सं०]

ग्राहकों से निवेदन

'विवेक शिखा' के ग्राहकों को दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि आगामी वर्ष से विवेक शिखा का वार्षिक शुल्क ५०)= (पचास रुपये होंगे। कतिपय अनिवार्य कारणों से ऐसा किया जा रहा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप सब पूर्व की भाँति हमें अपना आत्मीय सहयोग प्रदान करेंगे।

—सम्पादक

गुरु की खोज में

—स्वामी निखिलेश्वरानन्द
रामकृष्ण आश्रम, राजकोट (गुजरात)

चीन के प्रसिद्ध तत्त्वचिंतक लाओत्सु के एक अनुयायी एक कहानी सुनाया करते थे। एक युवक दस्युओं के दल में शामिल हुआ, जिसके सरदार का नाम ची था। एक दिन उस युवक ने सरदार से पूछा, "क्या चोरी-तस्करी से 'ताओ' (सच्चा पथ) मिल सकता है ?" ची ने कहा, "मुझे एक चीज तो ऐसी दिखाइये कि जिसमें ताओ न हो, एक नियम न हो या सच्चा पथ न हो। चोरी में में 'बुद्धिमत्ता' चाहिए कि जिससे धन-दौलत के बारे में जानकारी हासिल होती है। सर्वप्रथम प्रवेश करने का 'साहस' होना चाहिए, और आखिर में बाहर निकलने की 'वीरता' चाहिए, सफलता मिलेगी या नहीं उस बात का अंदाजा लगाने की 'दूरदर्शिता' चाहिए और अंत में चोरी का माल अन्य दस्युओं के बीच समान रूप से बाँटने के लिए 'न्याय' चाहिए। कोई भी चोर इन पाँच गुणों के बगैर सफल नहीं हो सकता।"

हर एक क्षेत्र में प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। स्कूल-कॉलेजों में अभ्यास के लिए जाते समय या संगीत, जुडो-कराटे, अंग्रेजी आदि—सीखने में लोग प्रशिक्षक की—गुरु की आवश्यकता को यूँ ही स्वीकार कर लेते हैं परन्तु अध्यात्म-विद्या पाने की बात पर लोग पूछते हैं, "क्या गुरु का होना आवश्यक है ?" श्री रामकृष्ण देव के शिष्य स्वामी ब्रह्मानंदजी महाराज से किसी ने पूछा, "महाराज, क्या गुरु का होना आवश्यक है ?" स्वामी ब्रह्मानंदजी महाराज ने मुस्कराते हुए कहा, "बच्चा, किसी को चोरी करना सीखना हो तो प्रशिक्षक की आवश्यकता होती है, तब फिर इस अति गूढ़ ब्रह्म विद्या को प्राप्त करने के लिए गुरु की आवश्यकता नहीं रहेगी क्या ?" आजकल तो पॉकेटमारों के भी 'गुरु' होते हैं ? उनको भी जेबकतरों के सरदार के नीचे कड़ी मिहनत के साथ प्रशिक्षण लेना पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य-सुविख्यात नाट्यकार-कवि श्री गिरीशचन्द्र घोष अपनी वृद्ध अवस्था में लोगों को होमयोपैथी दवाइयाँ देते थे। एक बार जब वे दवाई दे रहे थे तब एक युवक ने आकर कहा, "महाशय, मेरी घड़ी रास्ते में गुम गई है।" पास ही में एक सज्जन बैठे थे, उन्होंने जिज्ञासावश पूछा, "कब और कैसे गुम गई ?" युवक ने जवाब दिया कि फलां जगह पर फलां समय गुम हो गई। उस सज्जन ने युवक से कहा, "फिक्र मत करना। आपकी घड़ी आपको अवश्य मिल जाएगी।" ऐसी सांत्वना उन्होंने कैसे दी ? क्योंकि वे सज्जन जेबकतरों की टोली के 'सरदार' थे—'गुरु' थे।

आजकल 'गुरु' शब्द बहुत ही तुच्छ हो गया है—विद्यालय के 'गुरु', संगीत के 'गुरु', मेनेजमेन्ट के 'गुरु', जेबकतरों के 'गुरु', इस प्रकार 'गुरु', शब्द का उपयोग हर जगह बेहिचक होने लगा है और उसकी गरिमा कम हो गई है। दरअसल 'गुरु' शब्द अत्यंत गरिमायुक्त है। उसे सुनते ही हमारा मस्तिष्क श्रद्धा से नत हो जाता है। प्राचीनकाल से यह शब्द अध्यात्म विद्या—ब्रह्म विद्या प्रदान

करने वालों के लिए ही प्रयुक्त किया जा रहा है। 'गुरु' शब्द 'गु' (अर्थात् अंधकार), 'रु' (अर्थात् प्रकाश) इस प्रकार दो अक्षरों से बना हुआ है। जो अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाए—मोह के अंधकार से परम ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जाए केवल वही गुरु है :

गुकारोऽन्धकारस्तु रुकारस्तन्निवर्तकः।
अन्धकार निवर्त्या तु गुरुरित्यभिधीयते ॥

उपनिषद में गुरु की आवश्यकता दर्शाते हुए कहा गया है, 'तद्विज्ञानाथं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणि : श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' (मुंडकोपनिषद १, २, १२) "जिज्ञासु को शास्त्रज्ञ एवं ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास हाथ में समिध (यज्ञ के लिए उपयोगी लकड़ी—सेवा का प्रतीक) लेकर ही जाना चाहिए" 'एव' शब्द गुरु की अनिवार्यता का द्योतक है।

गीता में कहा है :

'तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया'
—(गीता : ४/३४)

"गुरु को प्रणत होकर, उनकी सेवा करके और प्रश्न पूछ के ज्ञान की प्राप्ति करनी चाहिए।"

आजकल प्रायः सभी विषयों पर ढेर सारी पुस्तकें उपलब्ध हैं। ज्यादातर लोग एसा मानते हैं कि हम आध्यात्मिक ज्ञान ग्रन्थों से पा लेंगे। परन्तु हम यह भूल रहे हैं कि एक ज्योति ही दूसरी ज्योति जगा सकती है। स्वामी विवेकानन्द जो यह बात समझाते हुए कहते हैं कि, "हममें से लगभग हर एक व्यक्ति हालांकि अत्यंत अद्भुत ढंग से आध्यात्मिक विषयों पर भाषण दे सकता है, परन्तु जब उसे स्वयं आचरण करना होता है तब हम देखते हैं कि हम अत्यंत अपूर्ण नजर आते हैं। इसका कारण यह है कि आध्यात्मिक विकास को त्वरित बनाने के लिए ग्रंथ अपूर्ण हैं। आत्मा की उन्नति करने की प्रेरणा अन्य आत्मा से मिलनी चाहिए। जिस पुरुष की आत्मा से ऐसी प्रेरणा मिलती है उसे गुरु कहा जाता है और जिस व्यक्ति की आत्मा में प्रेरणा संचारित होती हैं उसे शिष्य कहा जाता है।"

परन्तु इस ज्ञान का संक्रमण शिष्यों में हो पाए इसके लिए गुरु व शिष्य दोनों को समर्थ होना चाहिए। शास्त्र में कहा है, "आश्चर्यो वक्ता कुशलोस्य लब्धा आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः" वक्ता गुरु भी कुशल (विद्वान) होना चाहिए और श्रोता शिष्य भी दक्ष होने चाहिए। गुरु के लक्षण दर्शाते हुए शास्त्रों में कहा है कि गुरु को 'श्रोत्रिय', (जिन्होंने शास्त्रों का अध्ययन कर उनका मर्म जानकर अपने जीवन में आत्मसात् किया है।) 'ब्रह्मनिष्ठ' (ब्रह्मविषयक बातों में ही लीन), 'अवृजिनः' (निष्कपट, निष्पाप), 'अकामहतः' (कामनाशून्य) ऐसे अनेक गुणों से विभूषित होने चाहिए। इसी प्रकार शिष्यों के लक्षण भी दर्शाए हैं—शम-दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा समाधान—ऐसी षट्संपत्ति, नित्यानित्य वस्तु विवेक, इह लोक व परलोक के भोगों में विराग एवं मुमुक्षुत्व (मुक्ति प्राप्त करने की—आत्मज्ञान प्राप्त करने की प्रबल आकांक्षा)।

'ट्रांसमीटर' और 'रिसिवर सेट' दोनों उचित रूप से कार्यरत हों तभी टी० वी० पर दृश्य सही ढंग से नजर आता है। ठीक उसी प्रकार गुरु-शिष्य दोनों में योग्यता होना भी आवश्यक है।

किंतु ऐसी अद्भुत योग्यता रखनेवाले गुरु का मिलना बहुत ही मुश्किल है। तो फिर क्या करें? उसका उपाय है। एक रिसर्च स्कॉलर (शोधकर्ता) के लिए अत्यंत विद्वान शिक्षक (GUIDE) की आवश्यकता है। परन्तु सातवीं कक्षा के छात्र के लिए तो मैट्रिक उत्तीर्ण शिक्षक भी उपयुक्त हैं, वे भी उसे पढ़ा सकते हैं। इसी प्रकार हमारे भीतर

भी यदि आदर्श शिष्य के लक्षण पर्याप्त मात्रा में प्रकट न हुए हों तो हम आदर्श गुरु की अपेक्षा नहीं रख सकते। मगर जो हम से आध्यात्मिक पथ पर आगे निकले हुए हैं उनकी सहायता से हम कुछ फासला तो तय कर सकते हैं और क्रमशः प्रगति कर सकते हैं। परन्तु इस प्रकार से गुरु पाते समय बहुत ही सावधानी बरतनी चाहिए।

उपनिषद् में कहा है :

> अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयंधीराः
> पण्डितंमन्यमानाः।
> जंघन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव
> नीयमाना यथान्धाः॥
> (मुंडकोपनिषद : १/२/८)

"अविद्या में बसती ये अतिमूढ आत्माएँ आत्म वंचना से अपने आप को बुद्धिमान समझती हैं और मिथ्या ज्ञान से फूले न समाकर वे यहाँ वहाँ ठोकरें खातीं एक अन्धा दूसरे अन्धे को राह दिखाकर ले जा रहा हो ऐसे एक ही वर्तुल में घूमती रहती हैं।" स्वामी विवेकानन्द जो यह श्लोक उद्धृत करते हुए कहते हैं कि, "संसार ऐसे लोगों से भरा पड़ा है। हर कोई व्यक्ति गुरु बनना चाहता है। हर एक भिखारी लाख रुपये दान में देना चाहता है। ये गुरु इन भिखारियों के समान ही हास्यास्पद एवं बेतुके हैं।"

आजकल ऐसे नकली गुरुओं की भरमार-सी लगी हुई है। धर्म के क्षेत्र में शायद सबसे अधिक धोखा है। इसका कारण लोगों को साधना किये बगैर कुछ रुपयों में शीघ्र (INSTANT) समाधि, निर्वाण, कुंडलिनी-जागरण इत्यादि पा लेने की लालसा है। चमत्कार और सिद्धि पाने की लालसा में आकर वे नकली गुरुओं के फंदे में फँस जाते हैं। और इस तरह ही 'गुरु' जैसा महान श्रद्धा संचार करने वाला शब्द अपनी गरिमा गँवा रहा है।

इसी संदर्भ में एक मजेदार कहानी है। एक व्यक्ति को माँ काली के दर्शन करने की इच्छा थी, परन्तु इसके लिए वह साधना करने की इच्छा नहीं रखता था। खोज करने पर उसे एक गुरु मिले जिन्होंने पाँच सौ रुपये गुरु दक्षिणा लेकर बात तय की और एक मंत्र देकर कहा कि इस मंत्र के जाप करने से तीसरे ही दिन माँ काली के दर्शन होंगे। भक्त की खुशी का ठिकाना न रहा। ठीक तीसरे दिन वह अपने कमरे में बैठकर गुरुजी के द्वारा दिया हुआ मंत्र रट रहा था तब अचानक माँ काली ने दर्शन दिये। भक्त ने तुरंत ही साष्टांग प्रणाम किये फिर माँ से पूछा : "माँ, मैंने तो सुना है कि आपके दर्शन होने पर भक्त बहुत घबरा जाता है या बहुत ही भाव विभोर हो उठता है, परन्तु मुझे तो ऐसी कोई अनुभूति नहीं हुई, ऐसा क्यों ?" तब एक पुरुष स्वर सुनाई पड़ा, "ऐसे किसी भी प्रश्न के उत्तर मुझे उस व्यक्ति ने नहीं सिखाये मैंने यह भेष इसलिये धरा है कि उसने मुझे एक सौ रुपये नकद दिये हैं।"

बहुत से लोग इस प्रकार धोखे में रुपये गँवाकर भड़ास निकालते हैं कि आजकल ऐसे ठग-गुरुओं की संख्या बढ़ गयी है। परन्तु इसमें दोष किसका है? पाँच सौ रुपये में रेफ्रिजरेटर मिलेगा ऐसा विज्ञापन पढ़कर यदि कोई ऐसा रेफ्रिजरेटर खरीदे और बाद में जब चले नहीं तब उसमें दोष किसका है? परिश्रम किये बगैर जो मुफ्त में समाधि अवस्था पाना चाहे या कोई सिद्धि-चमत्कार चाहे वह भी एक प्रकार से ठग ही है। वैसे तो यह दो ठगों के बीच की लड़ाई है, उनमें से जो अधिक बुद्धिमान होगा वह जीत जाता है।

इसीलिये मंत्र दीक्षा ग्रहण करने से पहले यह सुनिश्चित कर लेना आवश्यक है कि, "गुरु ने प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त की है या नहीं ?" यह बात हम शायद समझ नहीं पाएँगे क्योंकि यह स्वसंवेद्य

वस्तु (SUBJECTIVE REALISATION) है। और जिन्होंने यह अनुभव प्राप्त किया होगा वे कभी इस बात का ढिंढोरा नहीं पिटवाएंगे। परन्तु हम इतना तो सुनिश्चित कर सकते हैं कि उनके चारित्र्य में अंगभूत नैतिक मूल्य समाविष्ट है कि नहीं और उनमें लेन-देन या नाम-यश इत्यादि की आकांक्षा है कि नहीं? ऐसी बातों की सच्चाई के बारे में निःसंशय होने के पश्चात् ही पूर्ण श्रद्धा से गुरु के आदेश का पालन करना चाहिए।

कई लोग ऐसा मानते हैं कि हमें गुरु की खोज करने की झंझट में नहीं पड़ना। हम सीधे ईश्वर से—अंतर्यामी से ही ज्ञान पा लेंगे। किन्तु यह भी इतना सरल नहीं है। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं "जिसने अपने बंधन काट डाले हों, ऐसी आत्मा की शरण में जाओ और वह आपको उचित समय पर कृपा करके मुक्त कर देगा। इससे भी महान् बात है—ईश्वर की शरण में जाना। परन्तु यह सबसे अधिक मुश्किल कार्य है, सदी में एकाध व्यक्ति ऐसा पाया जाता है जिसने वास्तव में ऐसा किया हो।"

हकीकत तो यह है कि आधुनिक मन गुरु को स्वीकार करते हुए हिचकिचाता है, जिसका कारण 'अहं' है। एक मनुष्य को "गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः" जैसा सम्मान देना उसे अनुचित-सा लगता है। किंतु वह यह भूल जाता है कि यह श्लोक गुरु में स्थित गुरु शक्ति के नाम पर रचा गया है और न कि गुरु के भौतिक रूप, बाह्य रंग ढंग के संदर्भ में। श्री रामकृष्ण कहते हैं—"सच्चिदानंद ही गुरु है।" यह सच्चिदानंद गुरु शक्ति ही गुरु में आश्रय पाकर रहती है और शिष्य पर कृपा करती है। फिर, कई लोगों को ऐसा लगता है कि मंत्रदीक्षा ग्रहण करने से हमारी स्वतंत्रता छिन जाएगी। परन्तु सच्चे गुरु कभी भी इस प्रकार से शिष्य की स्वतंत्रता छीन नहीं लेते, बल्कि शिष्य को धीरे-धीरे आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर करके उसका मन ही गुरु-सा बन जाए ऐसी अवस्था तक ले जाते हैं। यह एक लम्बी-सी प्रक्रिया है। जब तक साधक आध्यात्मिक रूप से काफी आगे बढ़कर शुद्धचित्त नहीं हो जाता तब तक उसका अशुद्ध मन धोखे में रखे ऐसी सम्भावना बनी रहती है। इस विपदा से गुरु उबारते हैं। इसीलिये कबीर कहते हैं—

गुरु बिन कौन बतावे वाट।
बड़ा विकट यम घाट॥
भ्रांति की पहाड़ी नदियाँ बीच में।
अहंकार की लाट॥
काम क्रोध दो पर्वत ठाढे।
लोभ चोर संघात॥
मद मत्सर का मेह बरसता।
माया पवन बहे दाट॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो।
क्यूं तरना यह घाट॥

पातंजल योग सूत्र में जिन्हें गुरुओं के गुरु—ईश्वर—के समान दर्शाया गया है उनके चरणों में प्रार्थना है कि सद्गुरु की शरण प्राप्त हो, उनके चरण कमल के पास हृदय श्रद्धा-भक्ति से भर जाए।

[गुजराती मासिक पत्रिका 'श्रीरामकृष्ण ज्योत' से साभार]

अनुवादक : हर्षद मनसुखलाल दवे

श्रीरामकृष्ण के संन्यासी शिष्यों की बातें (९)

—स्वामी निर्वाणानन्द

सभी कहते हैं राजा महाराज के बारे में बताइए। वह क्या ऐसी वैसी बातें हैं। अनेक उच्चस्तर से बोलना पड़ता है, मन को बहुत ऊपर उठाकर सुनना पड़ता है। पवित्र मन से सुनना होता है तभी तो समझ में आता है। वे सब बातें ठीक से विश्वास करनी होती है। ठाकुर कहते, "राखाल मेरा मानस पुत्र है। उसके साथ मेरा नित्य का संबंध है, वेद के आदि में जो हैं; उनके अंश से है।" ठाकुर भावचक्षु से राजा महाराज के संबंध में बहुत कुछ देखते थे, कहते, "वह व्रज-मंडल का राखाल है।"

राजा महाराज के पास जाने में सभी एक प्रकार से आदर मिश्रित भय पाते थे। इसका कारण था उनके भीतर Spiritual Halo (आध्यात्मिक आभा) का विद्यमान होना। उनके पास जाने से सभी का मन Spiritually (आध्यात्मिक भाव से) बहुत ऊपर उठ जाता था। उनके सान्निध्य का यह एक great influence (महान प्रभाव) था। वे जो कुछ बोलते वही सुनना होता था, जो कुछ करते वहीं करना होता था।

१८९३ ई० के जुलाई मास की बात है। आबू पहाड़ से महाराज एवं हरि (तुरीयानन्द) महाराज वृन्दावन आ पहुँचे। पैदल आये थे। इधर भिक्षा का समय निकल चुका है। हरि महाराज ने कहा, "देखते हैं राधारानी की कृपा। भिक्षा माँगने नहीं जाएँगे।" सवेरे एक सेठ खाने की सामग्री लेकर आया। जरूरत अनुसार उन दोनों ने लिया।

महाराज के पास कुछ साधु तपस्या के लिए जाने की अनुमति मांगने आये थे तो उन्होंने कहा था, "तुम लोगों का शरीर-मन तपस्या के लिए नहीं है। work (काम) को workship (पूजा) के रूप में लो, उससे ही होगा।"

१८९५ ई० के आरम्भ में महाराज वृन्दावन से मठ (आलम बाजार मठ) की ओर रवाना हुए। चलकर आए थे इसलिए कुछ मास समय लगा था। उस समय हरि महाराज भी वहाँ आ पहुँचे थे। महाराज मठ में ही हैं। स्वामी जी के Plan (योजना) के अनुसार काम करने की चेष्टा कर रहे हैं। एकबार भयंकर मलेरिया हुआ। दवाई का तो प्रश्न ही नहीं था खाने-पीने का भी अभाव था। शरत् महाराज (स्वामी सारदानन्द), सारदा महाराज (स्वामी त्रिगुणातीतानंद), गंगाधर महाराज (स्वामी अखण्डानन्द) सभी तपस्या करके वापस आ गये हैं। मठ में उस समय आर्थिक समस्या थी। एक दिन बलराम मंदिर में महाराज १०३°-१०४° बुखार के कारण सोए हुए हैं। शाम को किसी ने आकर पूछा, "महाराज, आप क्या कुछ खाएँगे?" महाराज ने कहा, "हाँ"। क्या खाएँगे?" जो भी मिल जाए।" एक बार सी— महाराज को बुखार हुआ था। उन्होंने खबर दी थी कि यदि खाने के लिए कुछ बिस्कुट एवं एक सेवक मिल जाए तो अच्छा हो। व्यवस्था हो गयी। उसके दूसरे दिन उन्होंने खबर दी— "अनारदाना मिले तो अच्छा हो।" इसी प्रसंग में महाराज अपने स्वयं के जीवन की उपर्युक्त घटना

का वर्णन कर रहे थे। कह रहे थे, "भगवान के ऊपर जो तुम लोगों की निर्भरता नहीं है एवं तुम लोग जो अपने स्वयं की आकांक्षा मिटाने के लिए ही इतना व्यस्त रहते हो, इस घटना से अच्छी तरह समझ में आ जाता है।

ठाकुर के शरीर त्यागने के बाद से महाराज रुपया-पैसा स्पर्श नहीं करते थे। एक बार एक लड़की ने राजा महाराज को कुछ देना चाहा। महाराज ने कहा, "हम सर्वत्यागी हैं, हमें कुछ भी नहीं चाहिए।" लड़की के अत्यन्त आग्रह करने पर उन्होंने कहा, "तुम्हारी यदि सच में देने की इच्छा है तो एक फतुआ दे सकती हो।" ये हैं महाराज!

महाराज कहा करते, "ठाकुर स्वयं भगवान हैं, अवतार धारण कर आए हैं। अब तुम लोगों के यहाँ (मठ में) सब कुछ आएगा। तुम लोग यदि त्याग-वैराग्य ठीक नहीं रखोगे और विलासिता में डूबे रहोगे, तो (इस संसार में) बह जाओगे।"

महाराज कहते, "गृहस्थों का अन्न खाने से उनकी सत्ता तुम लोगों के अन्दर आ जाएगी। तुम लोगों की त्याग-तपस्या इस प्रकार होनी चाहिए कि उसे काट सके, नहीं तो गृहस्थ के समान ही बुद्धि हो जाएगी।"

ठाकुर के प्रत्येक शिष्य ठाकुर की किसी भी चीज को नष्ट करने के विरोधी थे। योगेन महाराज (स्वामी योगानन्द) एक नींबू के बदले तीन नींबू काट दिए थे जानकर महाराज ने उनकी भर्त्सना की थी। खाना परोसने के समय भात नीचे गिरने से बाबूराम महाराज (स्वामी प्रेमानन्द) गाली देते थे। पहली बात तो ठाकुर की चीज नष्ट हो रही है दूसरी बात परोसने वाला उच्छृंखल हो जाएगा। जिसे भोजन परोस रहा है, उसके प्रति श्रद्धा रखना उचित है। काम देखने से लोग समझेंगे कि मेरे मन की गति किस तरफ है। लोगों के प्रति मेरी श्रद्धा रहने से काम का विकास भी उसी तरह सुन्दर होगा। कमरे में झाड़ लगाना, बरामदा साफ करना—यह सब महाराज अच्छी तरह देखते थे। अतिथि निवास में कभी-कभी जाकर देखते कि ठीक से साफ-सफाई की गयी है या नहीं। वे कहते 'सब कार्य जो भलिभाँति सम्पन्न कर सकता है, उसका जप भी अच्छा होगा।" महाराज ने एक दिन आलू का छिलका निकालने के लिए कहा। छिलका निकालने के बाद आलू की टोकरियाँ लाने के लिए कहा। देखकर कहा—"इन आलू के छिलकों को जिसने निकाला है उसका जप-ध्यान अच्छा होता है।" उन आलुओं को छीला था सुधीर महाराज (स्वामी शुद्धानन्द) ने।

माखन महाराज (स्वामी प्रज्ञानन्द) एक रात ध्यान करने के लिए स्वामी जी के मंदिर के पास वाले बिल्ववृक्ष के नीचे बैठे। जिससे सो न जायँ इसलिए अपने आपको बिल्ववृक्ष के साथ बाँध लिया था। महाराज ने यह बात सुनकर कहा था, "मन भगवद्मुखी नहीं होने से उस तरह बाँध रखने से क्या होगा? धीरे-धीरे अभ्यास करो।"

जनवरी १९१५ की बात है। त्रिगुणातीतानन्द जी तब अमेरिका में हैं। किन्तु बेलुड़मठ में महाराज ने एक दिन भावचक्षु से देखा कि त्रिगुणातीतानन्द जी उनके कमरे के सामने खड़े हैं। कुछ देर बाद ही वह मूर्ति अदृश्य हो गयी। इस घटना से महाराज अत्यन्त चिन्तित हुए। तुरन्त ही अमेरिका में तार करने के लिए कहा। उनके आदेशानुसार अमेरिका में तार भेजा गया। उस तार के अमेरिका पहुँचने के पहले ही अमेरिका से समाचार आया कि एक पागल युवक द्वारा बम विस्फोट से त्रिगुणातीतानन्द जी भयंकर रूप से आहत हो गए हैं, अस्पताल में भर्ती हैं। पन्द्रह

दिन अत्यन्त कष्ट पाने के बाद सारदा महाराज ने देह-त्याग किया। वह खबर आने के कई दिन पूर्व ही महाराज ने अपने पहले के उस दर्शन के बारे में हम लोगों को बताया था।

महाराज तब भुवनेश्वर मठ में हैं। वहाँ एक मेहतरानी थी। सभी को ठाकुर दर्शन के लिए मंदिर में जाते देख उसको भी मंदिर में ठाकुर-दर्शन करने की इच्छा हुई। तब वह महाराज को जाकर पूछती है, "बाबा, मंदिर जाकर ठाकुर दर्शन करने की मेरी भी बड़ी इच्छा होती है। आप क्या मुझे जाने देंगे। मेरा क्या वहाँ जाने का अधिकार है बाबा जी महाराज ?" महाराज ने खुश होकर कहा, "क्यों नहीं जा सकोगी ? यह लो, एक साबुन लो और अच्छी तरह नहा-धोकर साफ कपड़े पहनकर जा ठाकुर-दर्शन कर आ।" मेहतरानी ने वही किया। किन्तु यह बात उसके समाज के लोगों को मालूम हो जाने से उसे उल्टा-पुल्टा बोलने लगे कि "यह तुमने क्या किया ? क्यों मंदिर में गयी ? इससे अवश्य ही तुम्हारा अकल्याण होगा।" डर के मारे मेहतरानी फिर से महाराज के पास जाकर सब बताती है, महाराज उसे अभय प्रदान कर कहने लगे, "तुम्हें कोई भय नहीं। ठाकुर किसी का अकल्याण नहीं करते, सभी का कल्याण करते हैं।"

भुवनेश्वर मठ महाराज की पसन्द की जगह है। वे चाहते थे यह मठ होगा तपस्या करने का स्थान। वे कहते थे, "यहाँ और कितना सोओगे ? चार घंटे से ज्यादा सोना रोग विशेष है।" महाराज चाहते थे यहाँ विभिन्न प्रकार के पेड़ पौधे रहेंगे, गायें रहेंगी, साधन-कुटीर रहेगा। महाराज सीताफल बहुत पसन्द करते थे। भुवनेश्वर मठ के चारों ओर अनेक सीताफल के पेड़ थे।

महाराज ने दक्षिण भारत में रामनाम-संकीर्तन सुना था। वह सुर अलग था। उन्होंने अभी मठ में प्रचलित सुन्दर सुर-संयोजन किया था। शुरू-शुरू में दूसरे ढंग से किया था। १०८ रामनाम के आगे-पीछे जो स्तव संयोजित हुआ है वह महाराज के निर्देशानुसार हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द) ने किया था। यह 'कनकाम्बर' विष्णु दिगम्वर जब गाते तब सभी मुग्ध हो जाते। आहा, क्या भाव है ! यह सुर इमन कल्याण राग में है।

ठाकुर के अन्य शिष्यगण कहते थे कि पीछे से देखने पर राजा महाराज ठीक ठाकुर के जैसे लगते हैं। एक दिन हरि महाराज देखते हैं, ठीक मानो ठाकुर घूम रहे हैं। पास जाकर देखते हैं कि महाराज हैं। राजा महाराज का डील डौल खूब तगड़ा था। ऐसे राजा महाराज को ठाकुर आसानी से कंधे पर उठा लेते थे।

एक दिन राजा महाराज और विज्ञान महाराज (स्वामी विज्ञानानन्द) बातचीत कर रहे हैं। उस समय स्वामी जी के कमरे के पास वाली गंगा का घाट बन रहा है। नौका से चूना आने की बात है। महाराज ने कहा, 'यदि बरसात हो जाय तो मुश्किल होगा।" विज्ञान महाराज ने कहा, "ना ना, बरसात नहीं होगी।" महाराज ने तब कहा, "हाँ हाँ, वृष्टि होगी।" विज्ञान महाराज ने कहा, "ना, कहीं कुछ नहीं, वृष्टि नहीं होगी।" तब दस रुपये की शर्त लगायी गयी। नौका जब करीब-करीब घाट के पास आ गयी है उस समय बादल नहीं, कहीं कुछ नहीं है, अचानक एक दो बूँद बरसात हो गयी। तब राजा महाराज ने कहा, "लाओ, लाओ, शर्त का पैसा दो।" ऐसे ही उन लोगों का बाल स्वभाव था।

हरि महाराज एक दिन बोले थे, "महाराज की तपस्या अपने आप हो जाती थी। चरम

अंतर्मुखी मन था उनका, रात सात बजे जप करने बैठे, सबेरे आठ बजे उठे।"

एक बार स्वामी जी के शिष्य शुकुल (स्वामी आत्मानन्द) महाराज ने महाराज से कुछ प्रश्न पूछे। महाराज को हुक्का सजाकर दिया गया है। मैं जब वहाँ पहुँचा तब बहुत सी बातें हो चुकी है, मात्र महाराज की कुछ बातें सुन पाया। महाराज बोल रहे हैं, "देख रहा हूँ नित्य और लीला के बीच में मानो एक Fine (सूक्ष्म) कांच का पर्दा दिया गया है, बीच-बीच में इच्छा होती है कि इसे तोड़कर नित्य के साथ मिल जाऊँ किन्तु ठाकुर मिलने नहीं दे रहे हैं।

बाबूराम महाराज भक्तों से कहते थे, "महाराज वृन्दावन का बालक राखाल श्रीरामकृष्ण के अतरंग पार्षद हैं। ठाकुर के लीलाभिनय में महाराज अपनी पारी खेलने अवतीर्ण हुए हैं। जय रामकृष्ण! अनेक जन्मों की तपस्या के फलस्वरूप कोई महाराज के समान महापुरुष की कृपा प्राप्त करते हैं। स्वामी जी कहते हैं "आध्यात्मिकता में राजा हम सब लोगों से बड़े हैं।"

मठ में हम सब तरकारी काटने के लिए बैठे हैं। मैं बात कर रहा हूँ, 'कैसी जगह आया हूँ जहाँ पर आलू नहीं है।" बाबूराम महाराज सीढ़ी से उतर रहे थे, घूम कर खड़े होकर कहने लगे, "क्या कहा? टोकरी दिखाकर कहा," ले काट, कितना आलू खाना है खा।"

काशी में तब हरि महाराज रहते थे। उनके पीठ में भयंकर फोड़ा था। कलकत्ता से नामी सर्जन डाक्टर भट्टाचार्य आपरेशन करने गये हैं, जाकर देखते हैं सदानन्द पुरुष प्रसन्नवदन हो बैठे हुए हैं। आनन्द मानो उनके सम्पूर्ण शरीर से झर रहा हो। हरि महाराज ने बहुत देर तक डाक्टर के साथ गपशप किया। गप्प सुनते-सुनते डाक्टर भूल गए कि वे रोगी देखने के लिए आए हैं। बहुत देर तक बातचीत करने के बाद उन्होंने कहा, "मैं आपका आपरेशन करने के लिए आया हूँ।" तब हरि महाराज धीरे-धीरे अपने शरीर से चादर उठाकर फोड़ा दिखाते हैं। डाक्टर फोड़ा देखकर चौंक जाते हैं, कहते हैं, "महाराज, आप किस प्रकार इतने भयंकर फोड़ा के रहते हुए भी आराम से गपशप कर रहे हैं।" वे समझ नहीं पाये कि किस तरह शरीर में इतना कष्ट होते हुए भी मन इतने आनन्द में मग्न रह सकता है!

भगवान को पाने के लिए निस्वार्थ भाव से व्याकुल होना होगा। किसी अन्य कामना से भगवान को बुलाना नहीं, मात्र उनको पाने के लिए ही उन्हें बुलाना। उनको पाने के लिए ही व्याकुल होना। ठाकुर के शिष्यों के भीतर कैसी व्याकुलता मैंने देखी है। उन सबने ठाकुर की कृपा से चरम सत्य को अपने-अपने भाव के अनुसार जान लिया था। उन लोगों में किसी को कुछ बाकी नहीं था, ठाकुर ने उनके लिए सब कर दिया था किन्तु फिर भी ठाकुर के निर्देशानुसार उन्होंने उस चरम सत्य को निज की सम्पत्ति करने के लिए साधन भजन किया था। ठाकुर की महासमाधि के पश्चात् ५-६ वर्ष तक उन्होंने कठोर तपस्या की थी। खाना-पीना नहीं, कपड़ा-लत्ता नहीं— दिन पर दिन, रात पर रात व्यतीत कर दे रहे हैं। किसी प्रकार की चिंता नहीं, जब जो मिल रहा है उसे थोड़ा-सा मुँह में देकर फिर से व्याकुल होकर उनके नाम एवं ध्यान में मशगूल हैं। खाने की कोई चिंता नहीं है, चिंता करने के लिए समय नहीं है। कैसे सब दिन बीते हैं उनके!

ठाकुर के प्रत्येक त्यागी शिष्य ने सत्य की उपलब्धि की थी। भौतिक सुख-स्वच्छन्दता की ओर उनकी नजर नहीं थी। कठोर त्याग के द्वारा

उन्होंने अपना जीवन गढ़ा था। अपरिग्रह का अभ्यास करना होगा, नितान्त प्रयोजनीय वस्तु ग्रहण करते समय मन-मुख एक करना होगा। नहीं तो विलासिता के साथ adjustment हो जाएगा। ठाकुर बार-बार कहते थे, "मन मुख एक करना होगा।"

काम-काज के भीतर हम लोगों को भगवान की ओर ले जाने के लिए वे लोग कितने यत्नवान थे! उस समय पुराने दिनों में सब्जी काटने में बहुत attraction (आकर्षण) था। बाबूराम महाराज स्वयं बैठकर ठाकुर की बातें कहते। फलतः हम लोगों का मन बहिर्मुखी नहीं हो पाता था। हम लोगों के कामों का बँटवारा कर दिया गया था। नहीं तो बाबूराम महाराज कहते, "तुम लोग क्या बेगारी करने के लिए यहाँ आये हो?" अवश्य, सभी विषयों में उन लोगों की तीक्ष्ण-दृष्टि थी, क्योंकि वे मन प्राण से कहते थे कि सब कर्म ही ठाकुर का है। वे हमें सिखाते कि किस प्रकार काम करने से सम्पूर्ण मन ठाकुर की ओर जाएगा। वे कहते, "हम लोगों को सभी काम ठाकुर ने सिखाये थे।"

(उद्बोधन, चैत्र ३, मार्च १९९६ से अनूदित)

हनुमज्जयन्ती : २९ अक्टूबर

"जनम-जनम के दुःख बिसरावै"

—श्री मोरारी बापू

हमने धरती पर इसी जन्म में पहली बार जन्म लिया है, ऐसा नहीं है। हम इस दुनिया में इससे पूर्व कई बार जन्म ले चुके होंगे और पता नहीं अब भी कितनी यात्रा सबको करनी पड़ेगी। इन्सान इस धरती पर आया तब से एक सनातन प्रश्न लेकर आया और वह प्रश्न यह है कि "इस विश्व में दुःख का कभी नाश हो सकता है? इस जगत में दुःख का कभी अंत होगा क्या? जीवन में कभी दुःख आये ही नहीं ऐसे क्षणों का निर्माण हो सकता है या नहीं?

इस जगत में दुःख का नाश यदि संभव होता तो हमारे बड़े ऐसा न कहते कि "यह जगत दुःखमय है।" "संसार दुःखमय है।" दुःख का नाश नहीं होता। "दुःख के नाश की कोई व्यवस्था नहीं है।" इस जगत में जहाँ हम जी रहे हैं, वह दुःख से भरा हुआ है। तो फिर सुख शब्द आया कहाँ से? यदि दुःख का नाश ही नहीं हो सकता तो फिर सुख शब्द आया कहाँ से? एक प्रश्न उठ रहा है, परन्तु मुझे तुलसी दर्शन के आधार पर बोलना है इसलिए इस विश्व में दुःख का नाश नहीं है। और उसके नाश की कोई व्यवस्था नहीं है। इस परेशानी में मत पड़ो, नहीं तो समय बरबाद होगा। दुःख के नाश का एक ही उपाय है और वह है जगत में दुःख को भूल जाना। दुःख को भूलो तो सुख पाओगे। अन्यथा उसका नाश संभव नहीं है। और हनुमान चालीसा की प्रसिद्ध चौपाई में, "तुम्हरे भजन राम को पावे। जनम के दुःख बिसरावे।"

अब शांति से सोचिए, कल्पना करिए क्या तुलसी दास जी इस चौपाई में थोड़ा परिवर्त्तन करके ऐसा नहीं लिख सकते थे—

"तुम्हरे भजन राम को भावे।
जनम जनम के दुःख मिटावे ॥"

परन्तु इन सब अर्थों वाले शब्दों की बजाय गोस्वामी जी ने अनुभूतिपूर्वक लिखा है कि—

" जनम जनम के दुःख बिसरावे ॥"

वहां दुःख भूल जाने की विस्मृति की बात है। दुःख का नाश सम्भव नहीं है, दुःख को भूल सको तो ही सुखो हो सकते हो।

छोटी हो या बड़ी कोई भी समस्या आए, वह समस्या फिर पारिवारिक हो, सामाजिक हो, संस्थागत हो, या राष्ट्रीय हो, व्यक्ति से लेकर समष्टि तक, अथ से लेकर इति तक हर एक समस्या को दूर रखने का उपाय है, उसे भूल जाना।

भूलो और सुखी। जबकि बड़ी समस्या जीवन में यह है कि हम भूल नहीं सकते। किसी भी आदमो से पूछो कि अब कैसा चल रहा है? तो कहेगा अभी तो बहुत अच्छा है परन्तु देखो न तोन साल पूर्व कैसा हो गया? अब तीन साल को क्यों याद करता है? तू अभी वर्तमान को याद कर। तीन साल पूर्व का भूतकाल उसके वर्त्तमान सुख पर पर्दा डाल देता है। उसका स्मरण दुःख को ताजा कर देता है। श्रुति और विस्मृति शास्त्रों के दो शब्द हैं। श्रुति तो आवश्यक है ही, स्मृति और विस्मृति भी उतनी ही आवश्यक है। इसमें विस्मृति भी ईश्वर का बड़ा आशीर्वाद है।

सबसे बड़ी समस्या यह है कि हम भूल नहीं पाते। यात्रा में गए हो और तुम पूछो, "यात्रा कर आये? कहेगा—"हाँ" अच्छी व्यवस्था थी? कहेगा—'हाँ'। बस अच्छी थी। अंदर वीडियो भी था। भोजन की व्यवस्था अच्छी थी। जहाँ उतरते थे वहाँ ठहरने की व्यवस्था भी अच्छी थी। देव दर्शन भी अच्छे से हुए। मौसम भी अच्छा था। परन्तु एक बार ऐसे परेशान हुए कि पूछो मत। वह याद रखा बाकी सब बात भूल गये।

पहले के जमाने को देखो। भूतकाल को सोचो। अपने घर में चार से पांचवी थाली न थी। एक से दूसरी पीढ़ी तक जाओ, घर में एक ही बिस्तर था और मेहमान आते तो किसी अन्य के घर से मांगने जाना पड़ता था। एक ही खाट हुआ करती थी। मेहमान आते तो नीचे सुलाना पड़ता था। घी कहीं से उधार लाना पड़ता था। भूतकाल को देखो और सोचो। उसी के बाद से प्रगति हुई है। आदमी ने विकास किया है। पांच थाली से पांच सौ थाली हुई। एक बिस्तर के बदले पांच-पांच बेडरुम बने। एक मेहमान के बदले दस मंडली को संभालने की क्षमता बढ़ी है। फिर भी दुःखी क्यों हो? जीवन में एक ही घटना घटती है दुःख भूलाया नहीं जाता। जो भूल सको तो सुखी। रामायणकार तुलसी जी कहते हैं—"जनम जनम के दुःख बिसरावैं।"

शास्त्रों में लिखा है आदमी जन्म लेता है और मरता है यह दो दुःख सबसे बड़े हैं। वेदांत कहता है जनम मरण से मुक्त बनो और दुःख से मुक्ति।

सब बातें करते हैं जनम-मरण से छूटो भक्तों एवं संतों की बात अलग है। परन्तु वेदांत और मोक्ष मार्ग में जनम मरण ये सबसे बड़े दुःख है। रामचरित मानस में भी लिखा है--

"जनमत मरत दुसह दुख होई।"

यह दो सबसे बड़े दुःख है। उसकी तुलना में अन्य कोई दुःख है ही नहीं। अब सोचो जनम का दुःख तो हमें भूलना है क्योंकि हम जनम लेकर

आये हैं; मरना बाकी है। इसलिए उसके अनुभव बिना हम चर्चा नहीं करेंगे।

हम सब जन्म लेकर आये हैं ये हकीकत है। यह भयंकर पीड़ा होगी फिर भी आप जन्म के दुःख की वेदना का वर्णन किसी के सामने करें या उस समय का कोई चित्र बताया जाये या तो कोई समर्थ वक्ता जन्म के दुःख में हमें ओतप्रोत कर दे तो भी उस दुःख का हमें कोई असर नहीं होगा। क्योंकि जन्म का दुःख हम भूल चुके हैं। यह तो सबने अनुभव किया है परन्तु फिर भी किसी को याद नहीं है। साधु संत चाहे उसका जितना पीड़ादायक वर्णन करें उसका असर नहीं होता। उसका केवल एक ही कारण है कि दुःख मिट नहीं गया है, परन्तु भूलाया गया है, विस्मृत हो गया हैं।

यदि हनुमान जी का आश्रय करोगे तो एक पल का नहीं जनम जनम के दुःख विसरावै। एक जनम का दुःख भूलाया जाय तो भी सुख है। यहाँ तो गोस्वामी जी अनुभूति से कहते हैं, तुम्हारे भजन राम को पावै जनम जनम के दुख बिसरावै। और ईश्वर जब इन्सान को प्यार करता है तब उसे दुःख देता है। इस सूत्र को ठीक से समझो।

प्रभु जब मुझे व आपको ज़्यादा प्रेम करता है तब थोड़ा दुःख देता है। प्रेम का ऐसा स्वभाव है। भाई-भाई को प्रेम करता हो, मित्र-मित्र को प्रेम करता हो, पति-पत्नी या पत्नी पति को प्रेम करती हो—जहाँ प्रेम है वहाँ छेड़छाड़ का स्वभाव है।

दो मित्रों के बीच यदि गहरा प्रेम है तो वे एक दूसरे से मजाक करेंगे। एक को पता नहीं होगा वैसे दूसरे की जेब में कुछ डाल देगा। चोरी से पीछे कुछ बाँध देगा। उसमें आनन्द आता है। पहले को पता चलेगा कि इसने मेरी मजाक की है तो वह दूसरे से दो-तीन दिन तक बोलेगा नहीं तब पहला ज्यादा खुश होगा कि मैंने उसको ज्यादा सताया। जब प्रेम अधिक गहरा होता है तो छेड़छाड़ एक आदत बन जाती है और ईश्वर भी जब अधिक प्रेम करता है तब थोड़ी विपत्ति से छेड़छाड़ करता है। थोड़ी परेशानी थोड़ा कष्ट देता है।

परमात्मा जिसके साथ प्रेम करता है उसके साथ मजाक करते हुये थोड़ा दुःख देता है। भगवान जब बहुत सुख दे तो समझना कि उसने तुमसे प्यार करना बंद किया है।

सुखी इन्सानों सावधान! सुविधा वालों सावधान! माँ को खाना बनाना हो, पानी भरना हो तो वह सोचती है मुझे दूसरा काम है तब तक व अपने बच्चे को बिस्किट या चोकलेट दे देती है यह सोचकर कि बच्चा खाता रहे और वह अपना काम निपटा ले।

जब ईश्वर को हमारी ओर से नजर हटानी हो तब वह सुख रूपी चोकलेट या बिस्किट देता है कि तुम खाते रहो मैं अन्य काम करके आता हूँ। परमात्मा हद से ज्यादा सुख दे तब समझना कि उसे कोई अन्य काम है। इसलिए मुझे कुछ ज्यादा खिलौने दे गया है। दुःख आये तब समझना कि वह हमारे पास है, हमारे बेहद करीब हमारा खूब ध्यान रख रहा है, हमसे मजाक करके हमको कष्ट दे रहा है।

दुःख भूलने से सुख मिलता है। यह प्रथम सूत्र है। अब प्रश्न है कि दुःख भूलें कैसे? हम भूल नहीं सकते यही हमारी समस्या है। इसका प्रथम आधी चौपाई में उत्तर है, "तुम्हरे भजन" एक उपाय है। आपका कोई भजन करे" सौराष्ट्र में एक परब की जगह है। उस जगह के समर्थ भजनकार का प्रचलित भजन है –

दाता तमारा हरो इतने भजसे रे···
एने आंच न आवे लगार···रे

परदुनां पीर बावडुं झालवानी
खावन लागशे रे···

तुम्हारे भजन आपका भजन करने वाला दुःख को भूलने की कला में कुशल होगा।

बालक बाल मंदिर से घर लौटे और यदि रास्ते में गिर गया हो, या तो फिर किसी मोटर की ठोकर से पाँव की हड्डी टूट गई हो और तब कोई सज्जन उठाकर उसे हॉस्पिटल ले जाय, डॉक्टर प्लास्टर चढ़ा दे, बालक होश में आ जाय और यदि उससे पूछा जाय कि तुम्हारे पापा कहाँ है ? डॉक्टर को टेलीफोन नम्बर दिया जाय, वे फोन करे। पिता घर पर न हो माँ दौड़ती हुई अस्पताल पहुँचे। बच्चे को हॉस्पिटल में बिस्तर पर लेटा देख उसे गोद में ले ले। बालक को हालांकि प्लास्टर होने के कारण माँ का स्पर्श महसूस नहीं होता फिर भी माँ की गोद मिलने पर उसका आधा दुःख कम हो जाता है। उसका अर्थ यह नहीं कि प्लास्टर हट गया है।

डॉक्टर ने कहा होगा कि एक महीना हॉस्पिटल में ही रहना होगा फिर भी माँ की गोद से 50% प्रतिशत दुःख भूल जाता है। फिर यदि वह बच्चा डॉक्टर के पास रोता है वह शायद माँ के पास भी रोयेगा। लेकिन रुदन में कुछ अलग ही भय होगा। यही है—

तुम्हारे भजन राम को पावै।
जनम जनम के दुःख बिसरावै॥

'श्रीरामकृष्ण ज्योत' [अक्टू. - नव. १९९६ से गृहीत
अनुवादिका—**चन्द्रिका जाडेजा**

व्यवहारकुशलता की सीख

तुम्हें अपने से बड़े सभी लोगों का आदर करना चाहिए। हमारे देश में एक महान पुरुष हो चुके हैं। उनका नाम मदनमोहन मालवीय था। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है—'मैं जब कहीं जाने लगता था तो अपने माता-पिता के पैर छूकर जाता था। माता-पिता के आशीर्वाद से हमारे सब काम पूरे हो जाते थे। राष्ट्रपिता गांधी जी भी अपने माता-पिता का बड़ा आदर करते थे। महाराज शिवाजी अपनी माता के बहुत बड़े भक्त थे।

तुम्हारे घर पर कभी-कभी ऐसे लोग आकर ठहरते हैं जो या तो तुम्हारे सम्बन्धी होते हैं या जान-पहचान के होते हैं। ऐसे लोगों को अतिथि कहते हैं। तुम्हें चाहिये कि अतिथियों का सदैव आदर करो। उनके साथ मीठी वाणी में बातचीत करो और उनके खाने-पीने का ध्यान रखो। यदि तुम्हें अतिथियों के लिए कष्ट भी उठाना पड़े तो उठा लो, पर उन्हें कष्ट न होने दो।

पाठशाला या विद्यालय में तुम्हारे गुरुजन या शिक्षक तुम्हारे पूजनीय हैं। तुम्हारे शिक्षक जहाँ भी तुम्हें मिले, तुम्हें उन्हें आदर से हाथ जोड़कर प्रणाम करना चाहिए। शिक्षक के सामने तुम्हें कुर्सी या चारपाई पर नहीं बैठना चाहिए। सदा नम्रता भरी वाणी बोलनी चाहिए।

पाठशाला या विद्यालय में तुम्हारे बहुत से साथी भी होते हैं। उनमें कुछ तुमसे छोटे और बड़े होते है। तुम्हें छोटों से स्नेह और बड़ों का आदर करना चाहिए। इस तरह यदि तुम अपने व्यवहार में बड़ों को आदर देते रहोगे, तो एक दिन अवश्य आएगा, जब तुम भी पूजनीय बन जाओगे और लोगों से आदर पाओगे।

कन्याकुमारी में विवेकानन्द

—राजेन्द्र बहादुर सिंह 'राजन'
रायबरेली (उ० प्र०)

कन्या अन्तरीप के मन्दिर
के सन्निकट
प्रस्तरासन पर
बैठे समाधिस्थ संन्यासी
संत विवेकानन्द ने देखा—
भारत की जर्जर काया को
ईश्वर की अद्‌भुत माया को।
लगे सोचने—
भारत माँ के पुत्रों का
कैसा जीवन है,
उनके जीवन में दिखता
क्या कहीं कभी
विकसित मधुवन है?
जो लक्ष्मी के पुत्र
भोग में लिप्त हुये वे
करुणा, प्रेम, धर्म से
प्राय: रिक्त हुये वे।
अधिकाधिक भारतवासी
शोषित, शोणित हैं
क्षुधा, प्यास से व्यथित
आर्त से आरोपित हैं,
शिक्षा के अभाव से
मन में अन्धकार है
कैसी हरि की लीला
कैसा चमत्कार है?

स्वामी ब्रह्मानन्द जी के संस्मरण (३)

—स्वामी विजयानन्द

[प्रस्तुत संस्मरण रामकृष्ण वेदान्त सेंटर लन्दन द्वारा प्रकाशित द्विमासिक पत्रिका 'वेदान्त' (VEDANT) के अंक २६८ (मार्च-अप्रैल, १९९६) तथा अंक ७० (जुलाई-अगस्त, १९९६) में अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ था। इसके हिन्दी अनुवाद की यह तीसरी किस्त है। अनुवादक हैं, रामकृष्ण मठ, मद्रास से प्रकाशित अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'वेदान्त केसरी' के सम्पादक एवं रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ साधु —स्वामी ब्रह्मेशानन्द। —सं०]

पूर्ण निःस्वार्थता :

१६वीं और १७वीं शताब्दी हुए में भगवदावतार श्री चैतन्य महाप्रभु की जीवनी पढ़ते समय निम्नोक्त वाक्य मेरे मन पर अपनी छाप छोड़ गया था—"प्रभु निज आचरण से जीव को धर्म सिखाते हैं।" दूसरों के समान मैंने भी सुना था कि निःस्वार्थ जीवन यापन करने वाले महापुरुषों में परत्राणकारिणी शक्ति का विकास होता है। सभी युवकों के समान मैं भी कर्मठ था, अतः गीतोक्त निष्काम कर्म के सिद्धान्त का प्रशंसक होते हुए भी मैं ध्याननिष्ठ जीवन को अपर्याप्त समझता था। देश भक्त होने के कारण मैं देश की स्वाधीनता चाहता था, अतः निःस्वार्थ जीवन के प्रति मेरा आकर्षण स्वाभाविक था। लेकिन इन महान् संन्यासियों के दर्शन के पूर्व मैंने निःस्वार्थता का पूर्ण विकास किसी में नहीं देखा था। भारत को स्वाधीनता के महान् कार्य में रत तत्कालीन सभी महापुरुषों में न्यूनाधिक मात्रा में अहंकार विद्यमान था, भले ही उससे किसी को हानि नहीं पहुँचती थी या कोई द्वन्द्व उपस्थित नहीं होता हो। अतः मैं इस निष्कर्ष पर लगभग पहुँच ही चुका था कि पूर्ण निःस्वार्थता एक काल्पनिक अति उच्च आदर्श मात्र है जो व्यवहार में असंभव है। लेकिन भगवान् की अनुकम्पा से मुझे एक भिन्न प्रकार का अनुभव हुआ। मैंने एक आलोचक की गवेषणात्मक बुद्धि (दृष्टि) से देखने पर महाराज, स्वामी शिवानन्द जी, सारदानन्द जी, तुरीयानंद जी को पूर्णरूपेण निःस्वार्थ जीवन यापन करते पाया। उनके सभी कार्य, यहाँ तक कि उनका आहार-विहार-वस्त्रधारण आदि व्यक्तिगत कार्य भी हमारे लिए संयम और पूर्ण प्रशान्ति का प्रत्यक्ष दृष्टांत प्रस्तुत करने के लिए किये जाते थे। महाराज का निरीक्षण करने पर मुझे गीता के निम्नोक्त श्लोक का प्रत्यक्ष प्रमाण मिला :

> विहाय कामान्सर्वान् पुमान् चरति निःस्पृह।
> निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।।

महाराज पूर्णरूपेण अनासक्त थे। मैं निस्संदेह रूप से कह सकता हूँ कि वे परमात्मा में प्रतिष्ठित थे, निरंतर आनंद-समाधि का आस्वादन करते रहते थे और उनके जीवन की बाह्य अभिव्यक्ति केवल हमारे सतत् कल्याण के लिए ही थी। उनकी करुणा केवल रामकृष्ण मिशन के सदस्यों अथवा भक्तों तक ही सीमित नहीं थी। उनके पास आने वाला प्रत्येक व्यक्ति, वह चाहे किसी भी देश, जाति अथवा वर्ण और व्यवसाय का क्यों न हो, उनसे सांत्वना, साहस, आशा और विश्वास तथा जीवन के चरम उद्देश्य को पाने के लिये शक्ति और उत्साह प्राप्त करके ही जाता था। यही नहीं, महाराज परमानंद के घनीभूत विग्रह

थे। उनसे यह दुःख दलनकारी दिव्य आनंद निःसृत प्रसारित होता रहता था। उनके सान्निध्य में दुःख और विषाद प्रवेश नहीं कर सकते थे। यह मेरी कल्पना मात्र नहीं थी, अपितु सभी को इसका अनुभव होता था। अपनी अल्प बुद्धि से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि निःस्वार्थता में प्रतिष्ठित उन जैसे महामानव शुभ-शक्ति के प्रसार एवं प्रचार के एक शक्तिशाली यंत्र, डायनमो बन जाते हैं। उनके साथ टहलते हुए मैंने एक दिन उनसे कहा, "मैं ऐसा बनना चाहता हूँ।" इस पर महाराज ने कहा, 'बेटा, कई जन्मों तक तुम अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए दौड़ धूप करते रहे। अब इस एक जीवन का दूसरों के कल्याण हेतु उत्सर्ग कर दो। संयम, प्रेम और निःस्वार्थतापूर्ण जीवन यापन करो। सभी की सप्रेम सेवा करो और महान् बनो पुत्र।" यदि मैंने उनके जीवन में इस उपदेश को पूर्ण अभिव्यक्त होते न देखा होता तो पूर्ण निःस्वार्थता के सम्बन्ध में मेरा सन्देह कभी दूर नहीं होता।

अलौकिक सिद्धियाँ और दिव्य दर्शन :

अलौकिक सिद्धियों का वास्तविक आध्यात्मिक जीवन में कोई महत्व नहीं है, फिर भी दूसरों के समान मैं भी उनके विषय में उत्सुक था। अतः मैं महाराज में इन सिद्धियों की अभिव्यक्ति सम्बन्धी कुछ घटनाएँ यहाँ प्रस्तुत करूँगा। मैं केवल यही बताने के लिए उनका वर्णन कर रहा हूँ कि ऐसी सिद्धियाँ वास्तव में होती हैं तथा जो अपने स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर याने देह और मन को नियंत्रित कर लेते हैं वे इच्छानुसार बहिर्जगत को अथवा अधिदैविक घटनाओं को नियंत्रित कर सकते हैं, उनकी व्याख्या कर सकते हैं अथवा उनका पूर्वानुमान लगा सकते हैं।

श्रीरामकृष्ण के एक अन्य शिष्य स्वामी विज्ञानानंदजी को दिव्य दर्शनादि हुआ करते थे और वे इसके लिए संघ में प्रसिद्ध थे। ऐसा कहा जाता है कि देवी देवताओं के प्रायः दर्शन करते हैं। लेकिन इस विषय में वे अधिक नहीं बोलते थे। यही नहीं, वे लोगों में इन घटनाओं की सत्यता को अस्वीकार ही अधिक करने का प्रयत्न करते थे। जब कभी हम उनसे उनके दर्शनों के बारे में बताने को कहते तो वे कहते थे कि तुमने गलत सुना है अथवा यह कि इन बातों को अधिक महत्व नहीं देना चाहिए। बहुत अधिक जोर देने पर वे कहते थे कि इन घटनाओं की व्याख्या करना संभव नहीं है।

एक दिन प्रातःकाल वे अंतर्मुखी भाव से बैठे हुए थे और महाराज गंगा की वन्दना करते हुए कह रहे थे। "हे पतित पावनी माते, तुम्हें प्रणाम्, तुम्हें प्रणाम्।" फिर स्वामी विज्ञानानंदजी की ओर देख कर बोले, "पेशन (इस नाम से वे उन्हें पुकारते थे), क्या तुम गंगा की पवित्रता में विश्वास करते हो?" गंभीरता धारण करते हुए विज्ञानानंदजी ने कहा, "मुझे तो आपकी गंगा माता भारत की सबसे बड़ी और सबसे लंबी गटर दिखाई देती है।" इस कथन से महाराज काफी प्रभावित और अचंभित दिखाई दिये। वे बोले, "पर तुम्हें गंगा के विषय में ठाकुर की उक्ति तो मालूम ही है।" स्वामी विज्ञानानंद जी ने कहा, "हम लोग प्रत्यक्ष गोचर विषयों की चर्चा कर रहे हैं, कृपया ठाकुर को बीच में मत लाइए। क्या आप स्वयं नहीं देखते कि कितने कारखानों का मैला गंगा में गिरता है और हरिद्वार से लेकर समुद्र तक गंगा के दोनों किनारों पर और न जाने कितने कारखाने हैं।" इस पर महाराज ने कहा, "तो फिर तुम दैवी शक्तियों पर विश्वास नहीं करते?" स्वामी विज्ञानानंदजी ने कहा, "जब तक मैं अपनी आँखों से उन्हें न देखूँ तब तक मैं उनमें विश्वास नहीं कर सकता।"

महाराज उठ खड़े हुए और आकाश की ओर देखते हुए बोले, "मैं दस रुपये की बाजी लगाता हूँ कि आज दिन में एक बजे भारी वर्षा होगी।" स्वामी विज्ञानानंदजी भी खड़े हो गये और आकाश की ओर देखकर बोले, "वर्षा नहीं होगी, मैं इस दांव को स्वीकार करता हूँ।" और वे स्वामी विवेकानंद के मंदिर का निर्माण कार्य संचालन करने के लिए चले गये। तब लगभग ११ बजे का समय होगा। आसमान पूरी तरह साफ था। कहीं भी एक छोटा-सा बादल भी दिखाई नहीं दे रहा था। महाराज ने मुझे कहा, "जाओ और नाविक से चूने के पीपों को ढक देने को कहो।" मैंने ऐसा ही किया। पौने एक बजे महाराज बाथरूम में गये। एक मिनट पूर्व तक आकाश में एक भी मेघ नहीं था। अचानक मैंने देखा कि घने काले मेघ एक के ऊपर एक लहराते हुए आकाश को ढकने लगे महाराज ने मुझे कहा, "देखो, देखो, श्रीकृष्ण का रंग ऐसा ही है।" और वे स्वयं उन्हें देखने लगे। कुछ ही देर में सारा आकाश बादलों से ढक गया और ठीक एक बजे जब समय की सूचना देने वाली कलकत्ता की तोप की आवाज सुनाई दी, मूसलाधार बारिश होने लगी। स्वामी विज्ञानानंदजी खड़े हो गये और बिना कुछ कहे अपने कमरे में चले गये। महाराज की शब्द शक्ति के प्रभाव (की सूचक इस घटना) को मैंने स्वयं तथा एक अन्य संन्यासी ने प्रत्यक्ष देखा था।

रामकृष्ण मिशन के लगभग सभी केन्द्रों में क्रिसमस का उत्सव मनाया जाता है। मिशन के मुख्यालय बेलुड़मठ में यह क्रिसमस की पूर्व संध्या को मनाया जाता है। प्रतिवर्ष इस शुभ दिन आगंतुकों के कक्ष में एक विशाल वेदी तैयार की जाती है, जिस पर ईसा और माता मेरी के चित्र पुष्पों, गुलदस्तों और पुष्पमालाओं से सजाये जाते हैं। मुख्य मंदिर में आरती के बाद दीपक, धूप, पुष्प, केक आदि मिष्ठान्नों से ईसा मसीह की भगवदावतार के रूप में पूजा की जाती है। बहुत-सी अगरबत्तियाँ जलाई जाती हैं। उसके बाद बाइबिल से ईसा का जन्म वृत्तांत और पर्वतोपदेश पढ़ा जाता है। तदनन्तर २०-३० मिनट तक ध्यान होता है और उसके बाद भगवान् के कृपावतार सम्बन्धित भजन एवं स्तोत्रों का पाठ होता है। उस वर्ष महाराज मठ में विद्यमान थे और क्रिसमस-उपासना के समय उपस्थित थे। कक्ष में उनकी उपस्थिति से हम सभी को विशेष शांति की अनुभूति हुई। ध्यान के समय आसानी से ईसा का चिंतन करने में मन समर्थ हो गया। मठ के एक दक्ष गायक स्वामी अम्बिकानंद ने भजन गाया, "गरीब घर में जन्म लेने पर भी आपका यश सर्वत्र फैला और लोगों ने आपकी पूजा की है।" कुछ युवा संन्यासी समवेत गा रहे थे और वृद्ध होते हुए भी स्वामी शिवानन्दजी तबले पर संगत कर रहे थे। भजन समाप्त होने पर कक्ष में एक अपूर्व शांति छा गयी। सभी पूर्णरूपेण शांत थे, कोई हिल तक नहीं रहा था, यहाँ तक कि श्वास-प्रश्वास भी नहीं सुनाई पड़ रहा था। मैंने महाराज के मुख मण्डल की ओर देखा। वे पूर्णतः आत्मलीन थे। तबले से हाथ हटा कर स्वामी शिवानन्दजी भी आत्मलीन थे। मैंने सबको देखा—सभी की आँखें बन्द थीं। तब उस अभूतपूर्व शांति के प्रवाह में प्रवेश करने के लिए मैंने भी आँखें मूंद ली और एक आनन्द का अनुभव किया। संभवतः दस मिनट बाद महाराज ने वेदी के समक्ष प्रणाम् किया और खड़े हो गये। स्वामी शिवानंदजी भी उठ खड़े हुए और दूसरे लोग भी प्रणाम् कर उठ खड़े हुए। बाहर आते समय महाराज ने स्वामी शिवानंदजी से पूछा, "तारक दा, क्या आपने देखा ?" उन्होंने उत्तर दिया 'हाँ', महाराज ने आगे कहा, "ईसा नीला

वस्त्र धारण किये थे।" बाईबिल का पाठ करने वाले स्वामी विवेकानन्द के महान् शिष्य स्वामी शुद्धानन्द के निकट आने पर महाराज ने उनसे पूछा, "सुधीर, तुमने कुछ देखा ?" उन्होंने उत्तर दिया, "नहीं, मैंने देखा तो कुछ नहीं लेकिन गहरी शांति और आनंद का अनुभव अवश्य किया।" पहली बार मैंने पाया कि भगवद्-सत्ता एवं उनकी कृपा की अनुभूति हमारी चित्त शुद्धि के अनुरूप होती है। विशेष दिनों पर भगवान् की अनुभूति भक्तों के हृदय में भिन्न-भिन्न प्रकार से होती है; किसी को रूप दिखता है, तो किसी को आनन्द अथवा शांति की अनुभूति होती है। मुझे याद है, उस दिन सेंट जेवियर स्कूल के तीन ईसाई पादरी स्वेच्छा से मठ आये थे। किन्तु आमंत्रित किये जाने पर भी वे भीतर नहीं आये थे और समारोह के बाद हमारे बाहर आने पर एक ने मुझसे कहा था, "आप लोगों को हमारे प्रभु ईसा मसीह की इस तरह उपासना का कोई अधिकार नहीं है। यह अधर्माचरण है।" उनके कथन से मर्माहत होने पर भी मैं चुप रहा और सोचा, "खेद है कि वे इस शुभ संध्या बेला में महान् आनंद और शांति में हमारे सहभागी नहीं हो सके।"

उपनिषदों या वेद-वेदान्त में कहा गया है; "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।" जिस प्रकार हमारे श्वास-प्रश्वास निरंतर स्वचालित रूप से अनायास होते रहते हैं, उसी प्रकार निरंतर भगवद् भाव में डूबे हुए महापुरुष सतत् आध्यात्मिकता या दिव्य भाव का विस्तार करते रहते हैं। इसका मैंने महाराज में सैकड़ों बार अनुभव किया है। संध्या-आरती के समय महाराज नीचे गंगा की ओर वाले बरामदे में बेंच पर बैठते थे। प्रायः कुछ मिनटों बाद ही एक अपार्थिव शान्ति फैल जाती थी। मैं एक खंभे के पास नीचे जमीन पर बैठ जाता था और उस आनंदमय वातावरण का आस्वादन करता था। कोई बरामदे से नहीं गुजरता था फिर भी मेरा अनुमान है कि वह शान्ति, पवित्रता का वह परिवेश किसी बाह्य व्यवधान द्वारा खण्डित नहीं हो सकता था। जब तक महाराज नहीं हिलते थे तब तक मैं भी अपने स्थान से हिल नहीं सकता था। दो अवसरों पर महाराज ने मुझसे पूछा था, "बेटा, अभी कैसा अनुभव हो रहा है ?" मैंने उत्तर दिया था, "बहुत अच्छा महाराज।"

एक बार महाराज के जन्म दिन पर रात को श्रीरामकृष्ण के मन्दिर में विशेष पूजा हुई जो रात्रि-पर्यन्त चली। मन्दिर के बरामदे में बैठकर बीच-बीच में मैं अपनी रुचि के अनुसार कुछ स्तोत्र पाठादि कर रहा था। महाराज मन्दिर में आये और श्रीरामकृष्ण को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। तत्काल मुझे भगवत् सत्ता की जीवंत अनुभूति हुई और मैंने गाना बन्द कर दिया। मंदिर के भीतर से महाराज ने कहा, "बेटा, स्तोत्रपाठ चलने दो।" एक घंटे बाद वे उठकर अपने कमरे में चले गये। स्वामी वासुदेवानन्द उनको प्रणाम् करने आये तो उन्होंने पूछा, "हरिहर, पक्षिवाहन किस देवी का होता है ?" स्वामी ने एक श्लोक पढ़कर देवी का नाम बताया। महाराज ने धीरे से कहा, "हाँ वे यहाँ विद्यमान थीं। आहा! माता का रूप कैसा अपूर्व रूप था।" यह सुनकर मैं स्तंभित रह गया। मैंने कुछ भी नहीं देखा था किन्तु महाराज के प्रति अनुराग के कारण मुझे लगा कि उनका कथन पूर्णतः सत्य है। इसके अतिरिक्त सामान्य विषयों में मैं उनकी सत्यवादिता देख चुका था, अतः अतीन्द्रिय विषयों में उनके कथन पर संदेह करने का कोई कारण नहीं था। इन अतीन्द्रिय विषयों की सत्यता को मैंने बौद्धिक दृष्टि से स्वीकार कर लिया था और भविष्य में उनकी स्वयं अनुभूति करना चाहता था। कभी-कभी मुझे उनका

अनुभव होता भी था। एक बार एक रोग ग्रस्त युवती, जिसके बारे में डाक्टरों ने जवाब दे दिया था, के माता-पिता के शोक से विचलित हो मैंने उसके आरोग्य की प्रार्थना की थी। संभवतः मेरी प्रार्थना के कारण उसकी रक्षा हुई थी। मठ लौटने पर इस सम्बन्ध में मेरे द्वारा कुछ न बताने पर भी महाराज ने मुझे बहुत फटकारा था और सिद्धियों की कामना अथवा उनके उपयोग का निषेध करते हुए कहा था, "ऐसा अब कभी न करना। यदि तुम इस सिद्धि के चक्कर में पड़ गये तो तुम पथभ्रष्ट हो जाओगे और सब कुछ खो बैठोगे। वचन दो कि तुम भविष्य में ऐसा कभी नहीं करोगे। "जी हाँ महाराज", मैंने वचन दिया। महाराज ने आगे कहा, सिद्धियाँ महान् जाल हैं, जिनमें बहुत से सच्चे साधक फँस जाते हैं। भगवत्कृपा बिना इस दलदल से निकलना असंभव है।" न जाने कितने लोग सिद्धियों की उपलब्धि को आध्यात्मिकता समझने की भूल करते हैं। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव से कह सकता हूँ कि जो लोग सिद्धियों का उपयोग रोग-मुक्ति के लिए करते हैं, उनकी तुलना में जो लोग इन सिद्धियों की प्रशंसा कर उनकी प्राप्ति को ही आध्यात्मिक-जीवन का उद्देश्य मान बैठते हैं, वे कहीं अधिक बड़ी गलती करते हैं। अपने स्वयं के अनुभव से तथा अपने महान् गुरु के नाम की दुहाई देकर मैं अपने साधक भाइयों को सिद्धियों से दूर रहने की सलाह देता हूँ क्योंकि वह अध्यात्म का मार्ग नहीं है। कुछ विशेष मनःस्थिति वाले लोगों में सिद्धियाँ शीघ्र विकसित हो जाती हैं लेकिन सत्य, निःस्वार्थता और परमात्मा में अटूट विश्वास ही आध्यात्मिकता के सच्चे मापदंड हैं। ईसामसीह के उपदेशों की गलत व्याख्या से मानव जाति की बड़ी क्षति हुई है; लेकिन इसकी अपेक्षा स्थूल जड़ पदार्थों की उपासना संबंधी मतवादों तथा सिद्धियों की प्राप्ति के सिद्धांतों से कहीं अधिक हानि हुई है। इनके द्वारा लोग सच्चिदानंद स्वरूप, परमप्रेम स्वरूप, देशकालातीत परमात्मा से विमुख हो जाते हैं। परमात्मा की सत्ता की अपरोक्ष अनुभूति ही अभीष्ट है, बाह्य (परोक्ष) प्रमाण मात्र पर्याप्त नहीं हैं।

साधना विषयक उपदेश :

नित्य-नियमित साधना के विषय में महाराज ने एक बार मुझसे कहा था, "अनेक जन्मों के दीर्घकालीन अभ्यास के फलस्वरूप तुम्हारा मन देह, दृश्य जगत् और विपरीत मान्यताओं के प्रति इतना आसक्त हो गया है कि वह स्थूल देह से पृथक् और अनासक्त भी रह सकता है और दूसरों की मान्यताओं के दबाव के बिना भी स्वतंत्र रूप से चिन्तन कर सकता है। सामान्यतः मन वासनाओं, मुख्यतः देशकाल द्वारा सीमित विषय-वासनाओं द्वारा परिचालित होता रहता है। सामान्य मन नाम रूप के परे किसी नित्य-पदार्थ का चिन्तन नहीं कर सकता। वह देह के साथ जागता है और दिन भर देह में ही आसक्त और आबद्ध बना रहता है। "ईश्वर है", "वह करुणामय है"—इत्यादि कहने मात्र से हमारी आसक्तियाँ दूर नहीं होंगी। तुम जैसे युवकों को बड़ी मुश्किल से परमात्मा के संबंध में कुछ बौद्धिक धारणा हुई है। अतः यह परमावश्यक है कि तुम नियमित कठोर साधना द्वारा अपने मन को परि-वर्तित करो। कुछ ही समय में, एक वर्ष या छह महीनों में ही तुम देखोगे कि मन धीरे-धीरे नया पाठ सीख रहा है और उसके सारे क्रिया-कलाप ईश्वर-केन्द्रित हो रहे हैं, वह इष्ट चिन्तन करने लगा है। अभी वह अनित्य बाह्य जगत् को ही देखता है और उसे ही एक मात्र सत्य मानता है। लेकिन अभ्यास के द्वारा उसे अनुभव होने लगेगा कि भगवान् की ओर सदा ही लगे रहना उसका एकमात्र कर्त्तव्य है। कुछ साधना करो, लगन के

साथ प्रयत्न करो (और मेरी ओर देखते हुये बोले) एक सच्चे जिज्ञासु या अन्वेषक की तरह साधना करो। तब तुम पाओगे कि मैंने जो कहा है वह अक्षरशः सत्य है। कुतुबनुमा के काँटे की तरह मन का काँटा सदा भगवान् की ओर झुका होना चाहिए। ज्ञानी की तरह विचार करो, कर्मयोगी की तरह कर्म करो और भक्त की तरह प्रेम करो। बिना पूर्वाग्रह के विचार करो और जगत् के सत्यत्व के संबंध में अनुसंधान करो। तुम देखोगे कि जगत् का सत्यत्व नष्ट हो रहा है। कर्म करते समय दूसरों के हित का अधिक ध्यान रखना। निःस्वार्थतापूर्वक, अनासक्त होकर अपनी इच्छापूर्ति की लालसा के बिना कर्म करो। मन में एक अभूतपूर्व आनन्द का अनुभव होगा और अधिकांश समय प्रशांत बना रहेगा। भक्त की तरह अंतर्यामी परमात्मा के अनुभव का प्रयत्न करो। मन के समस्त वृत्तिप्रवाहों के बीच उनका अनुभव करो। अवश्य, आरम्भ में यह सब कल्पना मात्र होता है, किन्तु निष्ठापूर्वक साधना से मन पूर्णरूपेण परिवर्तित हो जायेगा। मन की उन सभी खिड़कियों को बन्द कर दो जिनके माध्यम से वह इन्द्रिय विषय भोग के लिए बहिर्गमन करता है। यही यम और नियम है। पवित्र मन का अर्थ है अनासक्त मन। पुत्र, अपने आपको पूरी तरह परमात्मा को समर्पित कर दो, तुम्हारा जीवन धन्य हो जायेगा। 'मैं यह कार्य कल करूँगा'—······इस प्रकार के सारे विचार दूर कर दो। यदि तुम तमोगुण पर विजय नहीं पा सके तो बाद में जो गुण की महान् क्रियाशीलता को कैसे संयत करोगे जो तुम्हें निरंतर नचाती रहेगी? सत्वगुण के विकास से ही सत्य का बोध संभव है। उसके बाद अपरोक्षानुभूति होती है जिसके लिए अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। तब तुम सच्ची स्वाधीनता का अनुभव करोगे और तुम्हारा जीवन सार्थक, कृतकृत्य और धन्य हो जाएगा। समझे बेटा! अब जाओ। अपना काम करो।"

इस अद्भुत उपदेश के कुछ दिनों बाद महाराज और स्वामी शिवानन्दजी दक्षिण भारत के लिए रवाना हुए। जाने से पूर्व उन्होंने मुझे बुलाया और कहा, "यहाँ रहो, और निष्ठापूर्वक साधना करो। ठाकुर यहाँ हैं।" स्वामीजी ने उन्हें यहाँ प्रतिष्ठित किया है। यह मुक्ति क्षेत्र है। सबकी प्रेमपूर्वक सेवा करो। किसी पर अपनी मान्यताएँ मत थोपो। जिस प्रकार तुम अपने मतों का आदर करते हो उसी तरह तुम्हें दूसरों के विचारों और मान्यताओं का भी सम्मान करना चाहिए। जब हम अपने-अपने पथ पर अग्रसर होने के बदले दूसरों के दोष देखने लगते हैं तब मनमुटाव एवं गलतफहमियाँ पैदा होती हैं। दूसरों के साथ सम्मान और सहानुभूति का व्यवहार करना न भूलो। एक बात और याद रखना: ऐसे व्यक्ति पर विश्वास मत करना जो हँसने की बात पर न हँसे और रोने के अवसर पर रोये नहीं। मैं शीघ्र लौटूँगा। उसके बाद और भी अच्छी बातें तुम्हें कहूँगा।" उनके प्रस्थान की इस सूचना से मेरी आँखों में आँसू आ गये। मुझे सांत्वना देने के लिए उन्होंने कहा, अपने "सम्राट् की सेवा" करते रहो। अमुक को कार्यालय में सहायता करना, तुम दोनों मित्र हो। मैं निश्चिन्त रहूँगा क्योंकि तुम्हारे हाथों में सब कुछ ठीक चलेगा। एक बात और; भगवत् सत्ता के अनुभव से विरहित किन्तु सच्चे साधक भगवान से प्रार्थना करते हैं, उसी तरह तुम भी भगवान् से कुछ-न-कुछ माँगोगे। लेकिन सावधान रहना कि तुम भगवदिच्छा को अपनी इच्छा के अनुरूप परिचालित करने का प्रयत्न न करो। भगवत्कृपा पर शर्तें मत थोपना। आसक्तिवश अथवा कुछ प्राप्ति की इच्छा से उनसे कुछ मत माँगना। यह अत्यंत महत्वपूर्ण बात है।

विश्वास रखो कि भगवान् जानते हैं कि उनकी प्राप्ति के लिये तुम्हें किन बातों की आवश्यकता है। तुम्हारा काम है भक्ति और निष्ठा द्वारा चित्त शुद्धि करना।

मठ से प्रस्थान से पूर्व एक दिन महाराज ने मुझे बुलाया। इस बार वे अकेले नहीं थे। स्वामी सारदानन्दजी, स्वामी शिवानंदजी और स्वामी अभेदानन्दजी उनके साथ थे। महाराज ने मुस्कुराते हुये उनसे कहा, "जानते हो, यह कहता है कि हम लोग 'परस्पर-प्रशंसा-समिति' के सदस्य हैं।" फिर मेरी ओर देखकर उन्होंने पूछा, "क्यों. ठीक है न ?" अत्यन्त लज्जित होते हुए मैंने कहा, "जी हाँ, मैंने ऐसा कहा है क्योंकि आप लोगों में से प्रत्येक दूसरे के बारे में यही कहता है, 'ओह। वे बहुत महान हैं।' मेरी धारणा है कि मानव होने के नाते आध्यात्मिक क्षेत्र में भी अंतर होना स्वाभाविक है अतः एक व्यक्ति दूसरे की तुलना में अवश्य महानतर होगा।' मेरी बात सुनकर महाराज हँसने लगे और बोले, तुम ठीक कहते हो, किन्तु जानते हो, हम सभी ठाकुर की संतान हैं, उनके दास हैं। इस दृष्टि से हम सभी समान हैं और तुम्हारे प्रेम एवं आदर के पात्र हैं। अतः हममें से कोई भी तुम्हें कुछ कहे तो भेद मत करना। हम में से किसी के भी मुख से जो भी बात निकले उसे तुम समान महत्व देना। समझे बटा ?" मैंने कहा, "जी हाँ महाराज, मैं आपके आदेश का अक्षरशः पालन करूँगा। लेकिन किसी व्यक्ति विशेष के प्रति अधिक आकर्षण को दूर करना मेरे लिए कठिन है। मुझे चूँकि कोई अनुभूति नहीं हुई है इसलिए मैं आपकी अनुभूतियों का अंकन आकलन नहीं कर सकता। लेकिन तुलना का भाव स्वाभाविक रूप से मन में उठ जाता है। इसका कोई अज्ञात कारण होना चाहिए।" तब महाराज ने मुझसे कहा, एक प्रकार से देखा जाये तो हम सभी में यह भाव है लेकिन इसको प्रोत्साहित मत करो। क्या तुम हम सभी को प्रेम नहीं करते ?" 'जी हां महाराज करता हूँ'— मैंने कहा। "तो जाओ और सभी को साष्टांग प्रणाम् करो और सबसे आशीर्वाद मांगो।" मेरे ऐसा करने पर उन्होंने कहा, "तुम एक अच्छे लड़के हो। ठाकुर तुम पर कृपा करें। अब तुम जा सकते हो।"

आज, पैंतीस वर्षों बाद मुझे यह बात समझ में आती है कि मुझ जैसे सामान्य जीव की तुलना में वे सभी बहुत महान् थे। उनकी अनुभूतियों की गहराई के विषय में मैं उस समय और आज भी कोई निर्णय नहीं कर पाया हूँ। इस अनुभव के आधार पर मैं पाठकों को यही सलाह दूँगा कि किसी अवतार अथवा महापुरुष विशेष के प्रति स्वाभाविक ही अधिक आकर्षण का अनुभव करने पर भी हमें विभिन्न अवतारों या महापुरुषों की परस्पर तुलना नहीं करनी चाहिए। वे सभी एक ही परमात्मा के प्रतिनिधि या प्रतीक हैं। व्यक्तिगत अभिरुचि अथवा उपदेश विशेष के कारण किसी के प्रति हमारा विशेष आकर्षण हो सकता है। लेकिन उनकी परस्पर तुलना करने से समय ही बर्बाद होता है. कोई लाभ नहीं होता। इनमें से किसी एक का अनुसरण करके अपने लक्ष्य परमात्मा तक पहुँचने के बाद हम पाएगें कि सभी उन्हीं के रूप हैं तथा उनमें भिन्नता देश, काल, और परिस्थितियों के कारण हैं। वस्तुतः कोई भी अवतार किसी दूसरे की अपेक्षा महान् नहीं है।

महाराज की अनुपस्थिति में मैं उनके निर्देशानुसार साधना करता रहा। उनकी कृपा से एक बार मुझे गंभीर शान्ति की अनुभूति हुई लेकिन उसी समय महान् भावावेश और सीने में तीव्र वेदना के कारण मैं अचेत हो गया। जब कभी मैं उस प्रशान्ति को प्राप्त करने का प्रयत्न करता, वह भावावेश और पीड़ा पैदा होती। इससे मैं थोड़ा घबरा गया। मेरे स्वास्थ्य में गिरावट को

देख कर एक मित्र और अन्य स्वामियों की सलाह से मैं ने अपनी साधना को थोड़ा कम कर दिया।

महाराज लौट आये, और मठ पुनः आनन्द से पूर्ण हो गया। उनके चरणों में साष्टांग प्रणाम् करने पर मुझे देख कर वे बोले, "क्या बात है? तुम ऐसे दुबले क्यों दिख रहे हो?" मैं ने अपनी शारीरिक एवं मानसिक अवस्था का वर्णन किया। यह देख कर कि मैं घबराया हुआ था, प्रतिदिन पीड़ा होती थी और कभी-कभी नींद भी नही आती थी, महाराज ने कहा, क्या तुम सोचते हो कि तुम मर जाओगे? तुम्हें कुछ नहीं होगा। तुम्हारी यह प्रथम आध्यात्मिक अनुभूति है और उसने तुम्हें झकझोर दिया है। आज दोपहर को डॉक्टर आएगा और वह स्वयं तुम्हारा परोक्षण करके बताएगा कि चिन्ता की कोई बात नहीं है।" डॉक्टर ने हृदय में कोई दोष नहीं पाया और उसका मत था कि पीड़ा मांसपेशियों के अचानक सिकुड़ने के कारण हुई है। होती है। उसने मुझे विश्राम करने की सलाह दी। प्रतिदिन महाराज मुझे देखने आते थे।

एक दिन मैं ने सुना कि कुछ युवक महाराज से मंत्र दीक्षा लेने का विचार कर रहे हैं। मैं स्वयं को कुछ स्वस्थ महसूस कर रहा था, अतः मैं उन्हें प्रणाम् करने गया और दीक्षा हेतु निवेदन किया। उन्होंने मुझे कहा कि चूँकि मैं विदेशी हूँ, अतः वे मुझे ईसा मसीह का मंत्र देंगे। ऐसा कह कर उन्होंने मंत्र का उच्चारण किया। यह देख कर कि इससे मुझे संतोष नहीं हुआ है उन्होंने एक और मंत्र मुझे दिया और कहा, "इसे याद रखना।" इस पर मैं ने कहा, "आप मुझ से मजाक कर रहे हैं। आप मुझे मंत्र दीक्षा नहीं देना चाहते।" महाराज ने कहा, "तुम तारक दा (स्वामी शिवानंद जी) को अधिक पसन्द करते हो। उनसे दीक्षा हेतु कहो, वे अवश्य तुम्हें मंत्र दीक्षा देंगे।" इस पर मैं ने दृढ़तापूर्वक कहा, "मैं ने आपको अपना गुरु मान लिया है। मैं नहीं जानता कि मैं किसे अधिक चाहता हूँ। यदि आप मुझे दीक्षा नहीं देंगे तो इस जन्म में मैं बिना दीक्षा ही रहूँगा।" मेरी आँखों से आँसू झरने लगे। महाराज गंभीर हो गये और कुछ कहे बिना वहाँ से चले गये।

एक घंटे बाद मेरे मित्र स्वामी ओंकारानन्द ने शुभ समाचार दिया कि महाराज मुझे बुला रहे हैं। मैं उनके पास गया। वे अत्यन्त प्रेम से मुझ से बोले, "कल मैं तुम्हें मंत्र दीक्षा दूँगा। उसकी तैयारी के सम्बन्ध में अमुक से पूछ लो।" दूसरे दिन महाराज ने मुझे मंत्र दीक्षा प्रदान की। साष्टांग प्रणाम् करते समय अपने कर-कमल मेरे मस्तक पर रखते हुए वे बोले, "अब से यह सिर भगवान् के चरण कमलों में समर्पित हो गया। उसे वहाँ से वापस मत लेना।" इस प्रकार मेरा जीवन धन्य हुआ।

पुनः एक घंटे उपरान्त जब मैं उन्हें प्रणाम् करने गया तो वे बोले, "अब कैसा लग रहा है?"

"बहुत अच्छा"—मैं ने कहा।

"क्या तुम और कुछ नही चाहते?"

"नहीं, मुझे परमानन्द का अनुभव हो रहा है।"—मैं ने कहा।

उन्होंने और दो बार मुझ से पूछा कि मुझे और कुछ तो नहीं चाहिये। तब मेरे अन्तर से ये शब्द फूट पड़े, "आशीर्वाद दीजिये कि मैं सभी को समान रूप से प्रेम कर सकूँ।" महाराज अपनी कुर्सी से उठ खड़े हुए और विशेष स्नेह के साथ अपने कर कमलों को मेरे मस्तक पर रख कर बोले, "बेटा, तुमने आँसुओं का मार्ग चुना है। मैं तुम्हें ठाकुर के प्रेम का आशीर्वाद देता हूँ; जिससे तुम देह त्याग के पूर्व अपनी हृदयाकांक्षा पूर्णकर सको।"

उनके आशीर्वाद से व्यक्तिगत भेदभाव की मेरी दीवारें धीरे-धीरे ढह रही हैं।

प्रेमस्वरूप परमात्मा का मुझे साक्षात्कार हो मैं उनका अनुभव कर सकूँ तथा उनके सभी रूपों में उन्हें देख सकूँ। परमात्मा की विस्मृति और अज्ञान के कारण होने वाले विभेदों का हम सभी भूल सकें और उनसे मुक्त हो सकें—यही मेरी प्रार्थना है।

स्वामी विवेकानन्द का मातृभूमि प्रेम,

—मोहन सिंह मनराल
सुरईखेत, अल्मोड़ा (उ० प्र०)

स्वामी विवेकानन्द भारत को क्यों प्यार करते थे ? क्या इसलिये कि यह उनकी मातृभूमि थी। यह ऋषि मुनियों व अवतारों की लीला भूमि थी। यह अतुलित प्राकृतिक सौन्दर्य में डूबी भूमि थी। निश्चय ही यह सब उनके भारत प्रम का कारण था मगर इससे भी आगे उनके भारत प्रेम के तीन पहलू थे। प्रथम थी भारत की आध्यात्मिकता जो स्वयं अनुभूति करके देखने पर आधारित थी। ईश्वर हो जाना ही उसका चरम लक्ष्य था। धर्म महासभा में उन्होंने कहा था—"हिंदुओं की सारी साधना प्रणाली का लक्ष्य है—सतत् अध्यवसाय द्वारा पूर्ण बन जाना। दिव्य बन जाना, ईश्वर को प्राप्त कर लेना और उसके दर्शन कर लेना।"

दूसरा पहलू है उस आध्यात्मिकता का मानवीय पक्ष जो मनुष्य को दिव्य व अपार सम्भावनाओं से युक्त मानता है न कि दुर्बल, नीच व पापी। इसी स्वीकारोक्ति से उसने समस्त प्राणियों के प्रति सहानुभूति व सहिष्णुता का भाव रखा है। मानव की इस दिव्यता को उद्घाटित करते हुए उन्होंने धर्म महासभा के मंच से कहा—"निश्चय ही हिन्दू आपको पापी कहना अस्वीकार करता है। आप तो ईश्वर की सन्तान हैं। अमर आनन्द के भागी हैं। पवित्र और पूर्ण आत्मा हैं। आप इस मर्त्यभूमि पर देवता हैं। आप भला पापी ? मनुष्य को पापी कहना ही पाप है।"

तीसरा पहलू है संकीर्णता की सीमाओं से बाहर निकल कर सार्वभौमिक स्वीकृति का दृष्टिकोण जो उसे धर्मों की माता के सर्वोच्च आसन पर अधीष्ठित करता है। धर्म महासभा के प्रथम चमत्कारिक व्याख्यान में उनके श्री मुख से निकलता है—"मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व अनुभव करता हूँ जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौमिक स्वीकृति दोनों की ही शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते वरन् समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं।"

ऐसी आध्यामिकता के जीवन्त विग्रह थे स्वामी विवेकानन्द और इसी कारण वे अपनी उस मातृभूमि को प्राणों से अधिक प्यार करते थे जिसके लघु रूप थे। भारत की करुणा उनके हृदय में रची बसी थी, उसकी प्रखर मेधा से वे आलोकित थे, त्याग व वैराग्य उनके चरित्र के प्रतिरूप थे तो वैराग्य उनका आभूषण बना था। वे जीती जागती भारत प्रतिमा थे। मानो भारत उनकी नस-नस में प्रवाहित हो रहा हो, उनकी धड़कन में धड़क रहा हो। यदि भारत का समझना चाहो तो विवेकानन्द को पढ़ो यह गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर बोले थे और विवेकानन्द को समझना चाहते हो तो उनके मातृभूमि प्रेम को समझो बाकी सब कुछ स्वयं समझ में आ जायेगा।

यही प्रेम उनके समस्त दर्शन को समझने की कुंजी है। इसे समझकर उनकी प्रधान शिष्या भगिनी निवेदिता ने लिखा था—

"भारतवर्ष स्वामी जी के गम्भीरतम आवेगों का केन्द्र था। भारतवर्ष उनके हृदय में धड़कता था। उनकी शिराओं में प्रतिध्वनित होता था।—केवल यही नहीं वे स्वयं भारतवर्ष हो गये थे। रक्त मांस से बनी भारत प्रतिमा। भारतवर्ष की आध्यात्मिकता, उसकी पवित्रता, उसकी प्रज्ञा, उसकी शक्ति, उसके स्वप्न एवं उसका भविष्य—वे सभी के प्रतीक पुरुष थे।"

स्वामी जी ने इसी भारत का प्रतिनिधित्व किया था न कि दुर्बल, अंधविश्वासी, गुलाम और पददलित भारत का, जैसी उसके प्रति पश्चिमी देशों की धारणा थी। उन्होंने उसी भारत का समस्त विश्व से और स्वयं भारत से भी परिचय कराया और दिखा दिया कि इसके अलावा भारत भारत नहीं कुछ और है। आज के परिप्रेक्ष्य में भी यही मान्यता लेकर चलना होगा। जो कुछ समय व भौतिकता के प्रवाह में आज दिख रहा है वह एक अल्पकालिक लहर के समान है जो आयेगी और चली जायेगी। इतिहास में दफन हो जायेगी और जीवित रहेगा वही भारत जिसका उद्घाटन स्वामी विवेकानन्द ने एक शताब्दी पूर्व किया था और भारत में लौटकर कहा था अब भारत ही केन्द्र है और वह जाग उठा है। वह सो नहीं सकता है मैंने आगामी कई शताब्दियों का इसका पृष्ठ पलटकर देख लिया है।

जागो भारत—

वे ललकार कर कह उठे थे—"उठो लम्बी रात की यह अन्तिम बेला है। जागो भारत वासियों और कितने दिन मौत की नींद सोते रहोगे। उठो जागो समस्त दुःख अभाव दूर करने की शक्ति तुम्हारे भीतर है। आत्मविश्वास जगाओ। काम में लग जाओ। कमर कस लो। सिंह गर्जना कर ललकारो 'उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्यवरान निबोधत्।"

यह जागरण का संदेश जिस भारत प्रेम की उपज था वह मूल रूप में उस धर्म पथ का संदेश था। जो मनुष्य को मुक्ति की ओर ले जाता है। भारत उनके लिए एक भूखण्ड, जाति सम्प्रदाय के समूह व धर्म के संकीर्ण दायरे में परिभाषित नहीं था वरन एक सावयव रूप था एक ऐसा रूप जो सारे विश्व को अपने में और अपने को सारे विश्व ब्रह्माण्ड में प्रसारित करने की मनोदशा में जीता है। आज भी भारत की यही यथार्थ परिभाषा है। वह किसी को गिराकर कभी ऊँचा उठने में विश्वास नहीं करता है। वह ऊँचा उठकर ऊँचा उठाने में हीं अपना गौरव समझता है। इसके अलावा जो भी दुर्गन्ध, अनैतिकता, अनाचार, भ्रष्टाचार अंध अनुकरणीयता हम भारत में देख रहे हैं यह भारत नहीं कुछ और हैं जो अल्पकालिक है और इतिहास की कब्र में दफन हो जायेगी।

स्वामी विवेकानन्द का सन्देश सदा जीवित रहेगा क्योंकि वह भारत का सन्देश था और वह उनके भारत प्रेम की उपज था। उन्होंने उसे प्रसारित करते हुए कहा था—मेरे पास एक संदेश है, वह मैं अपने ही ढंग से दूँगा। मैं अपने संदेश को न हिन्दू धर्म, न इसाई धर्म और न संसार के अन्य किसी धर्म के सांचे में ढालूँगा। बस मैं केवल उसे अपने ही सांचे में ढालूँगा। मुक्ति ही मेरा एकमात्र धर्म है और जो भी उसमें रुकावट डालेगा उससे मैं लड़कर या भागकर बचूँगा।

इस मुक्ति का बीज उनके भारत प्रेम में ही अन्तर्निहित है जो हमें निःस्वार्थ सेवा या कर्मयोग के माध्यम से विचारने व कार्य करने की प्रेरणा देती है। यही उस प्रेम का प्रतिदान था जिसे भारत ने महान स्वामी जी से पाया था। यही प्रेम सेवा कर्म व धर्म बनकर स्वामी जी के रूप में लौटकर आया था और अब सदा सदा के लिए उसका होकर रह गया था। ऐसे प्रेम को धन्य है ऐसे प्रेमपात्र को धन्य है और ऐसे महान देश भारत को भी धन्य हैं।

यात्रा-प्रसंग

सुन्दरवन द्वीप

—श्री नन्दलाल टाँटिया
कलकत्ता

सुन्दरवन के हासनाबाद, संदेशखाली द्वीपों में सन् १९५०/५२ के अकाल के समय मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी ने बड़े पैमाने पर राहत कार्य किया था। तभी से इस क्षेत्र का नाम सुन रखा है किन्तु वहाँ जाने का अवसर अब प्राप्त हुआ। रामकृष्ण मिशन के सेवा विभाग के अन्तर्गत सुन्दरवन के द्वीपों में बड़े पैमाने पर सेवा कार्य गत ४/५ वर्षों से हो रहा है। अभी कुछ महीनों पहले एक मोबाइल बोट में दो डाक्टर, चार कम्पाउण्डर, दवा, चश्मा एवं एक्स-रे मशीन सहित चालू हुआ है। स्वामी शशांकानन्द जी के निर्देशन में यह और प्रभूत सेवा कार्य संचालित होते हैं। स्वामी जी का आदेश रहा और मैं दो दिन के लिये सुन्दरवन गया। हम लोग नयजाट कलकत्ता से १०० कि.मी० दूर लंच में रवाना हुए। बोट में एलोपैथी, होमियोपैथी, एक्युप्रेसर एवं मैगनेट थेरपी की व्यवस्था है। दो सेवाभावी एम० बी० बी० एस० डाक्टर, दो कम्पाउण्डर, महिला नर्स आदि हैं। यह बोट प्रति दिन दो द्वीपों पर आता है। इस प्रकार ६ दिन में १२ द्वीपों में सेवा कार्य होते हैं। द्वीपों के लोगों को पहले से ही सूचना रहती है कि कौन से दिन सुबह या शाम को बोट पहुँचेगा। जेटी पर मरीजों की लाईन लगनी स्वाभाविक है। प्रतिदिन १२५/१५० मरीजों की चिकित्सा होती है। हम लोगों का बोट तीन घंटे बाद शमशेर नगर द्वीप पर पहुँचा और जेटी पर बालिकाओं ने शंख ध्वनि से स्वागत किया तथा जुलूस बनाकर हम लोगों को वहाँ के स्कूल में ले गये। शमशेर नगर एवं आस-पास के क्षेत्र की आबादी १६ हजार है और हाई स्कूल में छात्रों की संख्या एक हजार है। जिसमें छात्राओं की संख्या अधिक है। शिक्षा का प्रचार इन सभी द्वीपों में अच्छा हो रहा है। घर-घर में ठाकुर रामकृष्ण, माँ एवं स्वामी जी के चित्र लगे हैं। मिशन गाँवों में कम कीमत के शौचालय, सूर्य की ऊर्जा से प्रकाश, स्वच्छ पानी, गोबर गैस से बिजली आदि कार्य बड़े पैमाने पर करता है। द्वीपों में हजारों शौचालयों, सैकड़ों सोलर बत्ती, गोबर गैस प्लान्ट, ताँत की बुनाई, मधुमक्खी पालन आदि का काम हो रहा है। लोगों के चेहरे प्रफुल्लित हैं। मुझे माननीय महावीर त्यागी का स्मरण हो आया। सन् ६५/६६ में मैं उन्हें एयर-पोर्ट लेने गया था और जब हम लोग एयर-पोर्ट से रवाना हुए, वे दोनों तरफ बच्चों की तरह उत्सुकता से देखने लगे। त्यागी जी से मेरा खुला हिसाब था। मैं पूछ बैठा कि आपको इतनी क्या उत्सुकता है। उनका उत्तर बहुत ही माने का रहा कि एयर-पोर्ट से शहर तक पहुँचते ही वे वहाँ के आर्थिक, शैक्षणिक, रहन-सहन आदि की जानकारी कर लेते हैं। घरों में रंग-रोगन बारामदे में किस प्रकार कपड़े सूख रहे हैं। लोगों की चाल-ढाल एवं रास्तों की सफाई से अनुमान हो जाता है। त्यागी जी के फार्मूला से मुझे सुन्दरवन के द्वीपों की झलक बहुत ही संतोषजनक मिली। ताँत की साड़ी एवं गमछे बनाने वाली महिलाएं २५/-रु० रोज कमा लेती हैं और उनका सामान भी वहीं बिक जाता है। प्रायः घरों में पक्के शौचालय बन जाने से रास्ते में कहीं भी गन्दगी नहीं दिखाई दी।

शमशेर नगर से रवाना होकर हम लोग सुन्दरवन के मशहूर भींगा जंगल में गये। वहाँ बाघ बराबर आते हैं और कभी-कभी नदी पार करके पास के बस्ती क्षेत्र में भी आ जाते हैं। हम लोग रात को बोट में ही रहे। भोजन बोट में ही बना। दूसरे दिन सुबह ५ बजे सूर्य की लालिमा की छटा के अपूर्व दर्शन हुये। स्वतः ही 'ओम सूर्याय नमः' आदि। अब हम लोग दुलदुली टापू पर पहुँचे। वहाँ भी उसी प्रकार का स्नेहिल स्वागत। हम लोग स्थानीय लोगों के साथ द्वीप देखने को गये और बोट में डाक्टरों ने एकत्रित मरीजों का इलाज शुरू किया। दुलदुली में हम लोग तीन घंटे ठहरे और वहीं एक ग्रामीण भक्त के यहां जलपान किया। जिन गाँवों में गये सब जगह वहाँ के बने ताँत के गमछे एवं मधु भेंट किये गये। गाँव वालों की स्नेहसिक्त भावनाओं को ठेस नहीं लगे, इसलिये सहर्ष स्वीकार किया। सबसे मजे की बात यह है कि किसी भी द्वीप के लोगों ने अपनी आर्थिक समस्या नहीं रखी। हम लोग दो घंटे बाद बोट पर पहुँचे किन्तु मरीजों की चिकित्सा एवं जाँच पूरी नहीं हो पायी थी अतः कुछ देर और ठहरना पड़ा। अपराह्न में बोट में भोजन के पश्चात् छोटो शेहरा द्वीप में गये। वहाँ हम लोगों को हाई स्कूल में ले जाया गया। स्वामी जी ने छात्रों को सम्बोधित किया। प्रायः सभी छात्र ठाकुर रामकृष्ण एवं उनकी वाणी को जानते हैं। दसवीं और ग्यारहवीं क्लास के ६० छात्र-छात्राएँ रहे। छात्रों को कहा गया अगली बार स्वामी जी पर उनको बोलना है और बढ़िया बोलने वाले छात्रों को पुरस्कृत किया जायगा। गत वर्ष मिशन के महासचिव के साथ मैं गोहाटी गया था। वहाँ स्कूल की ४० छात्राओं में प्रत्येक को स्वामी जी पर तीन मिनट बोलने का समय दिया गया। सामने स्वामीजी का चित्र लगा था और विषय रहा 'स्वामी जी के प्रति तुम क्यों आकृष्ट हुई।' छात्रों ने बड़ी मजेदार उक्तियाँ दीं। एक लड़की १ /१५ वर्ष की रही होगी। उसने कहा कि महाराज आपने प्रश्न किया कि तुम स्वामी जी के प्रति कैसे आकृष्ट हुई। मैं विनीत भाव से आप से पूछती हूँ कि स्वामी जी का चित्र आपके सामने है। आप मुझे बताये कि स्वामी जी का कौन-सा अंग आपको आकृष्ट नहीं कर रहा है। आप अंग की बात छोड़िये। इनके हाथ में जो दण्ड है उसका दर्शन कीजिए। केवल वही आपको आकृष्ट करने में यथेष्ट है। हम सभी लोग बच्ची की बात से गद्-गद् हो गये। सुन्दरवन की जो छात्राएँ हैं उतनी तेज-तर्रार न हों किन्तु उनके भी उदगार खूब जमेंगे। मैंने वादा किया कि बरसात के मौसम के बाद वहाँ डिबेट सुनने हेतु आऊँगा और इस बीच सभी को स्वामी विवेकानन्द जी का साहित्य भेजवाने की व्यवस्था की है। छोटो शेहरा के बाद हम लोग सायंकाल सुलकुनी द्वीप पर पहुँचे। इस द्वीप पर रामकृष्ण मिशन का प्राइवेट आश्रम है। आश्रम के सचिव श्री हालदार स्कूल के अध्यापक हैं। हम लोग आश्रम में गये। श्री हालदार ने बताया कि प्रति सायंकाल आरती के समय १५/२० भक्त आते हैं। एक बूढ़ी महिला ने आश्रम हेतु जमीन दान दी, उससे भी मिलना हुआ। गत वर्ष रामकृष्ण मिशन के उपाध्यक्ष श्रीमद् स्वामी गहनानन्द जी महाराज ने सुलकुनी आश्रम में दो दिन का आवास किया था एवं लगभग दो सौ भक्तों ने दीक्षा ग्रहण की। हम बोट में नयजाट से रवाना हुये थे और लोटानी में हासनाबाद पहुँचे। रात्रि हो गयी थी। कुल मिलाकर यह यात्रा अति स्मरणीय रहेगी। गाँवों में लोगों की जैसी भक्ति देखी उससे मन में प्रेरणा मिलती है कि स्वामी विवेकानन्द की वाणी में आगामी एक हजार पाँच वर्षों तक ठाकुर राम कृष्ण की विचार धारा का प्रवाह रहेगा।

एक निवेदन

भगवान श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के चरण रेणु से तीर्थीकृत तथा स्वामी विवेकानन्द स्मृतिविजड़ित आकर्षण केन्द्र ज्योति लिंग बाबा वैद्यनाथ की इस पुनीत नगरी देवघर में रामकृष्ण संघ द्वारा परिचालित प्रथम शिक्षण संस्थान रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ की स्थापना सन् 1922 में हुई। भगवान श्री रामकृष्ण देव के अन्यतम पार्षद श्रीमत् स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज से अनुप्राणित तथा स्वामी विवेकानन्द के शिक्षादर्शों पर आधारित 75 वर्ष पूर्व प्रारम्भ की गई यह शिक्षण संस्थान आज पूरे भारतवर्ष में विख्यात है। रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष परमपूजनीय श्रीमत्स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने भविष्यवाणी की थी—'इस विद्यापीठ के माध्यम से भविष्य में बहुत महान कार्य सम्पन्न होगा, इसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।'

विद्यापीठ के बहुमुखी कर्म-प्रवाह में आर्थिक अवस्था से विपन्न 400 छात्रों के लिए आज 'विवेकानन्द बालकेन्द्र' मुख्य इकाई के रूप में कार्यरत है जिसमें निःशुल्क शैक्षिक तथा क्रीड़ा संबंधी एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इस अनुन्नत वर्ग को ही नवीन भारत का आधार बनाते हुए स्वामीजी ने कहा था—

"एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुए, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकान से, भुजवा के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों से, पहाड़ों—पर्वतों को भेदते हुए।' इस वाणी को मद्देनजर रखते हुए 'सबसे पीछे पड़े हुए, सबसे नीचे दबे हुए' वर्ग को अपने विनम्र भाव से शिक्षित करने के प्रयास में 'विवेकानन्द बाल केन्द्र' अनवरत संलग्न है।

संप्रति इन छात्रों की यथोक्त शिक्षा के लिए एक स्थायी भवन की नितान्त आवश्यकता है जिसकी अनुमानित लागत 10 लाख रुपये है। अतः रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर की ओर से मैं इस महान एवं पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के लिए आप उदारचेताओं से सहयोग की महती प्रार्थना करता हूँ। इति।

निवेदक
स्वामी सुवीरानन्द
सचिव
रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

नोट :—1. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के नाम से ही चेक या ड्राफ्ट भेजे जाएँ।
2. रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान धारा 80 [G] के अनुसार आयकर मुक्त है।

डाक पंजीयित संख्या - सी.एन.पी.-१४-८०

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।